नवम अध्याय

गुरुनाम तथा कुन्दकुन्दनाम-अनुल्लेख के कारण

१

गुरुनाम-अनुल्लेख का कारण

जैसा कि अष्टम अध्याय में सूचित किया गया है, आचार्य कुन्दकुन्द ने स्वरचित ग्रन्थों में अपने साक्षाद् गुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया। मुनि कल्याणविजय जी ने इसका कारण यह बतलाया है कि कुन्दकुन्द शुरू में यापनीयसम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे, किन्तु आगे चलकर वे अपने गुरु और यापनीयमत की धर्मविरुद्ध मान्यताओं और हीनप्रवृत्तियों के विरुद्ध हो गये। अन्त में उन्होंने अपने गुरु का साथ छोड़ दिया और पृथ्क दिगम्बर-संघ स्थापित कर लिया। इसीलिए उन्होंने अपने गुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया। (देखिये, अ.२/प्र.२/शी.३)।

आचार्य हस्तीमल जी ने यह कारण बतलाया है कि कुन्दकुन्द प्रारंभ में भट्टारक थे। जब उन्हें धर्म के तीर्थंकरप्रणीत वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हुआ, तब उनके मन में अपने भट्टारक गुरु के प्रति अश्रद्धा हो गयी और वे उनसे अलग हो गये। इसी कारण उन्होंने अपने ग्रन्थों में उनके नाम का स्मरण नहीं किया।

इनमें प्रथम मत की असत्यता का उद्घाटन द्वितीय अध्याय में '**कुन्दकुन्द के प्रथमतः यापनीयमतावलम्बी होने का मत असत्य**' (अ.२/प्र.२/शी.७) शीर्षक से किया जा चुका है और द्वितीय मत की अप्रामाणिकता अष्टम अध्याय में दर्शायी जा चुकी है। कुन्दकुन्द ने अपने गुरु के नाम का उल्लेख क्यों नहीं किया, इसका समाधान इतना जटिल नहीं है कि उसे पाने के लिए ऐसी कल्पनाएँ करनी पड़ें, जिनका कुन्दकुन्द से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

समाधान बहुत सरल है। हम देखते हैं कि **षट्खण्डागम** के कर्त्ता **पुष्पदन्त** और **भूतबलि, कसायपाहुड़** के कर्त्ता **गुणधर, तत्त्वार्थसूत्रकार गृध्रपिच्छ, आचार्य समन्तभद्र, पूज्यपाद स्वामी** आदि अन्य दिगम्बराचार्यों ने भी अपने ग्रंथों में स्वगुरुओं के नाम का स्मरण नहीं किया है। यहाँ तक कि अपने भी नाम की चर्चा नहीं की। **पाणिनि** ने **अष्टाध्यायी** में, **पतञ्जलि** ने **योगदर्शन** में और **वाल्मीकि** ने **रामायण** में

अपने गुरु के नाम का निर्देश नहीं किया। इससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में प्रायः निःस्पृह ग्रन्थकारों के द्वारा अपने ग्रन्थों में स्वयं के तथा स्वगुरु के नाम का उल्लेख करने की परम्परा नहीं थी। इसका कारण था ख्याति की आकांक्षा का अभाव। अतः आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा अपने गुरुनाम का उल्लेख न किया जाना किसी अन्य संभावना को जन्म नहीं देता।

कुन्दकुन्द ने जो बोधपाहुड (गा. ६१-६२) में **श्रुतकेवली भद्रबाहु** को अपना **गमकगुरु** (परम्परागुरु) कहकर उनका जयकार किया है, उसका विशेष प्रयोजन है। वह है अपने ग्रंथों में किये गये प्ररूपण की प्रामाणिकता ज्ञापित करना अर्थात् यह प्रकट करना कि वह स्वकल्पित नहीं है, अपितु श्रुतकेवली द्वारा वर्णित सर्वज्ञ के उपदेश पर आश्रित है, जैसा कि उनके निम्नलिखित वचन से स्पष्ट होता है—"**वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं**" (स.सा./गा. १)।

षट्खण्डागम के टीकाकार **वीरसेन स्वामी** टीका के प्रारंभ में ग्रन्थ के कर्त्ताओं का परिचय देते हुए **भगवान् महावीर, गौतमस्वामी** और **पुष्पदन्त** तथा **भूतबलि** को षट्खण्डागम का कर्त्ता बतलाते हैं और प्रश्न करते हैं कि यहाँ कर्त्ता का प्ररूपण किसलिए किया गया? और इसके उत्तर में कहते हैं—"**शास्त्र की प्रामाणिकता दिखलाने के लिए, क्योंकि वक्ता की प्रामाणिकता से ही वचन की प्रामाणिकता का पता चलता है, ऐसा न्याय है।**"[१]

इसी न्याय का अनुसरण करते हुए कुन्दकुन्द ने अपने वचनों की प्रामाणिकता दर्शाने के लिए उन्हें श्रुतकेवली भद्रबाहु के उपदेश पर आश्रित बतलाया है।

आचार्य कुन्दकुन्द को अपने ग्रन्थों में वर्णित जीवादि के स्वरूप की प्रामाणिकता दर्शाना विशेषरूप से आवश्यक हो गया था, क्योंकि उनके समय में मूलसंघ के अन्तर्गत कुछ ऐसे मुनिसंघ विद्यमान थे, जो श्रुतकेवली भद्रबाहु के उपदेश से च्युत होकर **लौकिक** (**पार्श्वस्थ-कुशील**) मुनियों का आचरण करते थे। वे मन्दिरों में नियतवास करते थे, कृषि-वाणिज्य करते थे, यक्ष-यक्षिणियों को पूजते और पुजवाते थे, मंत्रतंत्र, ज्योतिष, वैद्यक आदि ऐहिक कर्मों में प्रवृत्त होते थे, गृहस्थों के विवाह-सम्बन्ध भी तय कराते थे। अतः जिनशासन के मूलस्वरूप की रक्षा के लिए कुन्दकुन्द को यह बतलाना आवश्यक हो गया था कि उक्त मुनिसंघों का यह आचार-विचार सर्वज्ञ प्रणीत नहीं, अपितु स्वकल्पित है। सर्वज्ञप्रणीत धर्म वही है, जो अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु द्वारा कथित है। उसमें मुनियों के लिए उपर्युक्त प्रवृत्तियों का निषेध है। कुन्दकुन्द

१. "किमर्थं कर्त्ता प्ररूप्यते? शास्त्रस्य प्रामाण्यप्रदर्शनार्थं, 'वक्तृप्रामाण्याद् वचनप्रामाण्यम्' इति न्यायात्।" धवलाटीका/षट्खण्डागम / पु.१/१,१,१/ पृ.७३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

को श्रुतकेवली—कथित धर्म का उपदेश गुरुपरम्परा से प्राप्त था। उसका ही निरूपण उन्होंने अपने ग्रन्थों में किया है। इसी का बोध कराने के लिए कुन्दकुन्द ने स्वयं को श्रुतकेवली भद्रबाहु का **परम्पराशिष्य** कहा है। ऐसा कहकर कुन्दकुन्द ने न केवल अपने वचनों की, अपितु अपनी गुरुपरम्परा की भी प्रामाणिकता दर्शायी है, क्योंकि उन्हें श्रुतकेवली-भणित उपदेश गुरुपरम्परा से ही प्राप्त हुआ था। अतः अपने उपदेश को श्रुतकेवली-भणित बतलाकर कुन्दकुन्द ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि उनके गुरु-प्रगुरु भी श्रुतकेवली भद्रबाहु की ही परम्परा के थे।

२

कुन्दकुन्द-नाम-अनुल्लेख का कारण

इसी प्रकार अनेक दिगम्बर-ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में कुन्दकुन्द के नाम का स्मरण नहीं किया है। विभिन्न विद्वानों ने इसके भी अलग-अलग कारण बतलाये हैं, जो असंगत हैं। यहाँ उनका क्रमशः निरसन किया जा रहा है।

२.१. आचार्य हस्तीमल जी के मत का निरसन

आचार्य हस्तीमल जी ने कहा है कि धवलाकार वीरसेन स्वामी और उनके शिष्य-प्रशिष्य जिनसेन, गुणभद्र, हरिवंशपुराणकार जिनसेन आदि भट्टारकसम्प्रदाय के थे तथा कुन्दकुन्द भट्टारकसम्प्रदाय में दीक्षित होकर उससे अलग हो गये थे, इसलिए **वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, लोकसेन** आदि ने अपने ग्रन्थों में कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख नहीं किया।[२] ये वचन प्रामाणिक नहीं हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१. वीरसेन स्वामी सेनसंघी थे और **सेनसंघ** की पट्टावली में उन्हें किसी भी स्थान के भट्टारकपीठ पर आसीन नहीं बतलाया गया है। **इन्द्रनन्दी** ने **श्रुतावतार** में लिखा है कि पहले उन्होंने **चित्रकूटपुर** में रहकर अपने गुरु से सिद्धान्त पढ़ा, तत्पश्चात् **वाटग्राम** में आकर वहाँ के जिनमन्दिर में रहते हुए **षट्खण्डागम** पर टीका लिखी।[३] इससे सिद्ध है कि वे किसी भट्टारकपीठ के अधीश नहीं थे।

२. वीरसेन स्वामी ८वीं शताब्दी ई० में हुए थे (देखिये, अध्याय १०/ प्रकरण १/ शीर्षक १०.१) और १२वीं शताब्दी ई० के पूर्व भट्टारकसम्प्रदाय का उदय नहीं हुआ था।

---

२. देखिये, अध्याय ८/ प्रकरण २/ शीर्षक १/ उपान्त्य अनुच्छेद।

३. श्रुतावतार/ कारिका १७७-१८३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३. आदिपुराणकार **आचार्य जिनसेन** ने **पार्श्वाभ्युदय** में वीरसेन स्वामी, उनके शिष्य विनयसेन तथा स्वयं को 'मुनि' 'गरीयान् मुनि' और 'मुनीश्वर' विशेषणों से विशेषित किया है।[४] तथा प्रवचनसार की तात्पर्यवृत्ति के कर्त्ता **जयसेन** ने, जो **सेनगण** (संघ) के ही थे, अपने गुरु एक अन्य **वीरसेन** को 'जातरूपधर' और **निर्ग्रन्थपदवीधारी** बतलाया है।[५] **दर्शनसार** के रचयिता **देवसेन** ने जिनसेन के शिष्य गुणभद्र के लिए 'महातपस्वी, पक्षोपवासी, भावलिंगी मुनि' इन शब्दों का प्रयोग किया है।[६]

ये तीन हेतु इस बात के प्रमाण हैं कि वीरसेन, जिनसेन आदि आचार्य भट्टारकपीठ पर आसीन अजिनोक्त-सवस्त्रसाधुलिंगी भट्टारक नहीं थे। उनके साथ जुड़ी 'भट्टारक' उपाधि उन्हें उनकी विद्वत्ता के अभिनन्दनार्थ प्रदान की गई थी।[७]

यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि सेनसंघी वीरसेन स्वामी भट्टारक सम्प्रदायवाले भट्टारक थे, तो सेनसंघ की पट्टावली में कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख नहीं है, इससे सिद्ध है कि कुन्दकुन्द भट्टारकसम्प्रदाय के नहीं थे।

यदि कहा जाय कि भट्टारकसम्प्रदाय से अलग हो जाने के कारण सेनसंघ की भट्टारक-पट्टावली में कुन्दकुन्द का नाम नहीं है, तो प्रश्न उठता है कि जब भट्टारकपट्टावली में कुन्दकुन्द का नाम ही नहीं है, तब यह किस आधार पर माना जा सकता है कि वे भट्टारकसम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। प्रमाण के अभाव में ऐसा मानना तो कपोलकल्पना मात्र है।

---

४. श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृङ्गः श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्।
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम्॥ पार्श्वाभ्युदय ४/७१।

५. सूरी श्रीवीरसेनाख्यो मूलसङ्घेऽपि सत्तपाः।
नैर्ग्रन्थ्यपदवीं भेजे जातरूपधरोऽपि यः॥ जयसेनप्रशस्ति / प्रवचनसार / पृ.३४५।

६. सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविण्णाणी।
सिरिपउमणंदिपच्छा चउसंघसमुद्धरणधीरो॥ ३०॥
तस्स य सीसो गुणवं गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो।
पक्खुववासुट्ठमदी महातवो भावलिंगो य॥ ३१॥
तेण पुणो विय मिच्चुं णाऊण मुणिस्स विणयसेणस्स।
सिद्धंतं घोसित्ता सयं गये सग्गलोयस्स॥ ३२॥ दर्शनसार।

७. श्रीवीरसेन इत्यात्तभट्टारकपृथुप्रथः।
स नः पुनातु पूतात्मा वादिवृन्दारको मुनिः॥ ५५॥
लोकवित्त्वं कवित्वं च स्थितं भट्टारके द्वयम्।
वाङ्मताऽवाङ्मता यस्य वाचा वाचस्पतेरपि॥ ५६॥ आदिपुराण / प्रथम पर्व।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

को श्रुतकेवली—कथित धर्म का उपदेश गुरुपरम्परा से प्राप्त था। उसका ही निरूपण उन्होंने अपने ग्रन्थों में किया है। इसी का बोध कराने के लिए कुन्दकुन्द ने स्वयं को श्रुतकेवली भद्रबाहु का **परम्पराशिष्य** कहा है। ऐसा कहकर कुन्दकुन्द ने न केवल अपने वचनों की, अपितु अपनी गुरुपरम्परा की भी प्रामाणिकता दर्शायी है, क्योंकि उन्हें श्रुतकेवली-भणित उपदेश गुरुपरम्परा से ही प्राप्त हुआ था। अतः अपने उपदेश को श्रुतकेवली-भणित बतलाकर कुन्दकुन्द ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि उनके गुरु-प्रगुरु भी श्रुतकेवली भद्रबाहु की ही परम्परा के थे।

२

कुन्दकुन्द-नाम-अनुल्लेख का कारण

इसी प्रकार अनेक दिगम्बर-ग्रन्थकारों ने अपने ग्रन्थों में कुन्दकुन्द के नाम का स्मरण नहीं किया है। विभिन्न विद्वानों ने इसके भी अलग-अलग कारण बतलाये हैं, जो असंगत हैं। यहाँ उनका क्रमशः निरसन किया जा रहा है।

२.१. आचार्य हस्तीमल जी के मत का निरसन

आचार्य हस्तीमल जी ने कहा है कि धवलाकार वीरसेन स्वामी और उनके शिष्य-प्रशिष्य जिनसेन, गुणभद्र, हरिवंशपुराणकार जिनसेन आदि भट्टारकसम्प्रदाय के थे तथा कुन्दकुन्द भट्टारकसम्प्रदाय में दीक्षित होकर उससे अलग हो गये थे, इसलिए **वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, लोकसेन** आदि ने अपने ग्रन्थों में कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख नहीं किया।[२] ये वचन प्रामाणिक नहीं हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

१. वीरसेन स्वामी सेनसंघी थे और **सेनसंघ** की पट्टावली में उन्हें किसी भी स्थान के भट्टारकपीठ पर आसीन नहीं बतलाया गया है। **इन्द्रनन्दी** ने **श्रुतावतार** में लिखा है कि पहले उन्होंने **चित्रकूटपुर** में रहकर अपने गुरु से सिद्धान्त पढ़ा, तत्पश्चात् **वाटग्राम** में आकर वहाँ के जिनमन्दिर में रहते हुए **षट्खण्डागम** पर टीका लिखी।[३] इससे सिद्ध है कि वे किसी भट्टारकपीठ के अधीश नहीं थे।

२. वीरसेन स्वामी ८वीं शताब्दी ई० में हुए थे (देखिये, अध्याय १०/ प्रकरण १/ शीर्षक १०.१) और १२वीं शताब्दी ई० के पूर्व भट्टारकसम्प्रदाय का उदय नहीं हुआ था।

---

२. देखिये, अध्याय ८/ प्रकरण २/ शीर्षक १/ उपान्त्य अनुच्छेद।

३. श्रुतावतार/ कारिका १७७-१८३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३. आदिपुराणकार **आचार्य जिनसेन** ने **पार्श्वाभ्युदय** में वीरसेन स्वामी, उनके शिष्य विनयसेन तथा स्वयं को 'मुनि' 'गरीयान् मुनि' और 'मुनीश्वर' विशेषणों से विशेषित किया है।[४] तथा प्रवचनसार की तात्पर्यवृत्ति के कर्त्ता **जयसेन** ने, जो **सेनगण** (संघ) के ही थे, अपने गुरु एक अन्य **वीरसेन** को 'जातरूपधर' और **निर्ग्रन्थपदवीधारी** बतलाया है।[५] **दर्शनसार** के रचयिता **देवसेन** ने जिनसेन के शिष्य गुणभद्र के लिए 'महातपस्वी, पक्षोपवासी, भावलिंगी मुनि' इन शब्दों का प्रयोग किया है।[६]

ये तीन हेतु इस बात के प्रमाण हैं कि वीरसेन, जिनसेन आदि आचार्य भट्टारकपीठ पर आसीन अजिनोक्त-सवस्त्रसाधुलिंगी भट्टारक नहीं थे। उनके साथ जुड़ी 'भट्टारक' उपाधि उन्हें उनकी विद्वत्ता के अभिनन्दनार्थ प्रदान की गई थी।[७]

यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि सेनसंघी वीरसेन स्वामी भट्टारक सम्प्रदायवाले भट्टारक थे, तो सेनसंघ की पट्टावली में कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख नहीं है, इससे सिद्ध है कि कुन्दकुन्द भट्टारकसम्प्रदाय के नहीं थे।

यदि कहा जाय कि भट्टारकसम्प्रदाय से अलग हो जाने के कारण सेनसंघ की भट्टारक-पट्टावली में कुन्दकुन्द का नाम नहीं है, तो प्रश्न उठता है कि जब भट्टारकपट्टावली में कुन्दकुन्द का नाम ही नहीं है, तब यह किस आधार पर माना जा सकता है कि वे भट्टारकसम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। प्रमाण के अभाव में ऐसा मानना तो कपोलकल्पना मात्र है।

---

४. श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृङ्गः श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान्।
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण काव्यं व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम्॥ पार्श्वाभ्युदय ४/७१।

५. सूरी श्रीवीरसेनाख्यो मूलसङ्घेऽपि सत्तपाः।
नैर्ग्रन्थ्यपदवीं भेजे जातरूपधरोऽपि यः॥ जयसेनप्रशस्ति / प्रवचनसार/ पृ.३४५।

६. सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविण्णाणी।
सिरिपउमणंदिपच्छा चउसंघसमुद्धरणधीरो॥ ३०॥
तस्स य सीसो गुणवं गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो।
पक्खुववासुट्ठमदी महातवो भावलिंगो य ॥ ३१॥
तेण पुणो विय मिच्चुं णाऊण मुणिस्स विणयसेणस्स।
सिद्धंतं घोसित्ता सयं गये सग्गलोयस्स॥ ३२॥ दर्शनसार।

७. श्रीवीरसेन इत्यात्तभट्टारकपृथुप्रथः।
स नः पुनातु पूतात्मा वादिवृन्दारको मुनिः॥ ५५॥
लोकवित्त्वं कवित्वं च स्थितं भट्टारके द्वयम्।
वाङ्मिताऽवाङ्मिता यस्य वाचा वाचस्पतेरपि॥ ५६॥ आदिपुराण/प्रथम पर्व।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसके उत्तर में यदि आचार्य हस्तीमल जी कहें कि नन्दिसंघ की भट्टारकपट्टावली में कुन्दकुन्द का नाम है, तो प्रश्न खड़ा होता है कि तब यह किस आधार पर कहा जा सकता है कि वे बाद में भट्टारकसम्प्रदाय से अलग हो गये थे? कुन्दकुन्द के भट्टारकसम्प्रदाय में दीक्षित होने और बाद में उससे अलग होने के साहित्यिक या शिलालेखीय प्रमाण के अभाव में ऐसा मान लेना कपोलकल्पना के अतिरिक्त क्या है?

निष्कर्ष यह कि न तो सेनसंघ की पट्टावली केवल भट्टारकपट्टावली है, न ही नन्दिसंघ की। दोनों में अपने-अपने संघ के मुनियों का भी उल्लेख है और भट्टारकों का भी। इसलिए सेनसंघ के आचार्य **वीरसेन, जयसेन, गुणभद्र** आदि मुनि ही थे, भट्टारकपीठों पर अभिषिक्त भट्टारक नहीं। अतः "ये भट्टारक थे और **कुन्दकुन्द** भट्टारकसम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद उससे अलग हो गये थे, इसलिए इन भट्टारक-ग्रन्थकारों ने द्वेषवश कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख नहीं किया" **आचार्य हस्तीमल जी** का यह कथन मिथ्या सिद्ध हो जाता है।

यह कथन इसलिए भी मिथ्या है कि नन्दिसंघ के पीठाधीश भट्टारकों ने न केवल अपने ग्रन्थों में कुन्दकुन्द के नाम का आदरपूर्वक उल्लेख किया है, अपितु स्वयं को उनके अन्वय का बतलाकर[८] अपने को गौरवान्वित भी किया है। पन्द्रहवीं शती ई० के भट्टारक **सकलकीर्ति** ने अपने **वीरवर्धमानचरित** के मंगलाचरण में **आचार्य कुन्दकुन्द** की निम्नलिखित शब्दों में वन्दना की है—

अन्ये ये बहवो भूताः कुन्दकुन्दादिसूरयः।
सुकवीन्द्राश्च निर्ग्रन्थाः ह्य सन्ति सर्वे महीतले॥ १/५६॥

पञ्चाचारादिभूषा ये पाठका जिनवाग्रताः।
वन्द्याः स्तुता मया मेऽत्र दद्युः स्वस्वगुणांश्च ते॥ १/५७॥

इस प्रकार भट्टारकसम्प्रदाय में तो कुन्दकुन्द का नाम आदरपूर्वक लिया जाता था, किन्तु जो ग्रन्थकार भट्टारकसम्प्रदाय के नहीं थे, उन्होंने ही अपने ग्रन्थों में कुन्दकुन्द का स्मरण नहीं किया। यहाँ तक कि समयसारादि के टीकाकार आचार्य **अमृतचन्द्र**

८. क— "संवत् १३८० वर्षे माघसुदि ७ सनौ श्रीनन्दिसङ्घे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० (भट्टारक) शुभकीर्तिदेव तत्शिष्य सर्वीति ---।" भट्टारकसम्प्रदाय/लेखांक २२८।

ख— "श्रीबलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्रीमहि (नन्दि) सङ्घे कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भ० (भट्टारक) श्रीवसन्तकीर्तिदेवाः तत्पट्टे भ० श्री विशालकीर्तिदेवाः।" भट्टारकसम्प्रदाय/लेखांक २४४।

ने भी ग्रन्थकर्त्ता के रूप में कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख नहीं किया। इसका कारण अभी अन्वेषणीय है।

२.२. प्रो. एम. ए. ढाकी के मत का निरसन

प्रो. एम० ए० ढाकी ने ग्रन्थकारों द्वारा **कुन्दकुन्द** के नाम का उल्लेख न किये जाने का एक अन्य ही कारण बतलाया है। वे कहते हैं कि दसवीं शताब्दी ई० (आचार्य अमृतचन्द्र के समय) के पूर्व तक न तो किसी दिगम्बर आचार्य ने अपने ग्रन्थ में कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख किया है, न ही उनके ग्रन्थों पर टीका लिखी गई। इससे सिद्ध होता है कि वे आचार्य **अमृतचन्द्र** के सौ-दो-सौ वर्ष पूर्व ही हुए थे।[९]

अर्थात् **प्रो० ढाकी** के अनुसार कुन्दकुन्द वीरसेन स्वामी आदि से अर्वाचीन थे, इसलिए उन्होंने कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख नहीं किया। किन्तु, **आचार्य कुन्दकुन्द** ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में हुए थे, इसका सप्रमाण प्रतिपादन दशम अध्याय में द्रष्टव्य है। उन प्रमाणों पर दृष्टि डालने से सिद्ध हो जाता है कि कुन्दकुन्द के नाम-अनुल्लेख का ढाकी जी द्वारा बतलाया गया कारण सर्वथा मिथ्या है।

२.३. प्रेमी जी के मत का निरसन

स्व० **पं० सुखलाल जी संघवी** और स्व० **पं० नाथूराम जी प्रेमी** के बीच भी इस विषय में पत्रव्यवहार हुआ था। संघवी जी के पत्र के उत्तर में प्रेमी जी ने लिखा था—"**श्रुतावतार, आदिपुराण, हरिवंशपुराण, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति** आदि प्राचीन ग्रन्थों में जो प्राचीन आचार्यपरम्परा दी हुई है, उसमें **उमास्वाति** का बिलकुल उल्लेख नहीं है। श्रुतावतार में कुन्दकुन्द का उल्लेख है और उन्हें एक बड़ा टीकाकार बतलाया है, परन्तु उनके आगे या पीछे उमास्वाति का कोई उल्लेख नहीं है। **इन्द्रनन्दी** का **श्रुतावतार** यद्यपि बहुत पुराना नहीं है, फिर भी ऐसा जान पड़ता है कि वह किसी प्राचीन रचना का रूपान्तर है और इस दृष्टि से उसका कथन प्रमाणकोटि का है। **दर्शनसार** ९९० संवत्[१०] का बनाया हुआ है। उसमें **पद्मनन्दी** या **कुन्दकुन्द** का उल्लेख है, परन्तु **उमास्वाति** का नहीं। **जिनसेन** के समय **राजवार्तिक** और **श्लोकवार्तिक** बन चुके थे, परन्तु उन्होंने भी बीसों आचार्यों और ग्रन्थकर्त्ताओं की प्रशंसा के प्रसंग में उमास्वाति का उल्लेख नहीं किया, क्योंकि वे उन्हें अपनी परम्परा का नहीं समझते थे। एक बात और है। **आदिपुराण, हरिवंशपुराण** आदि के कर्त्ताओं ने कुन्दकुन्द का भी उल्लेख नहीं किया है, यह एक विचारणीय बात है। मेरी समझ में कुन्दकुन्द एक खास आम्नाय

---

९. The Date of Kundakundācārya, Aspects of Jainology, Vol. III, pp. 187-189.
१०. वि० सं० ९९० (तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा / खण्ड २/ पृ.३६९)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

या सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। उन्होंने जैनधर्म को वेदान्त के साँचे में ढाला था। जान पड़ता है कि जिनसेन आदि के समय तक उनका मत सर्वमान्य नहीं हुआ और इसीलिए उनके प्रति उन्हें कोई आदरभाव नहीं था।''[११]

इस पर आपत्ति करते हुए **प्रो० ढाकी** प्रश्न करते हैं कि यदि कुन्दकुन्द की नई विचारधारा से अन्य आचार्य सहमत नहीं थे, तो उन्होंने उसका प्रतिवाद क्यों नहीं किया और असहमत होते हुए भी उनके ग्रन्थों का अनुसरण क्यों किया जाता रहा?[१२]

प्रो० ढाकी का यह प्रश्न उचित है। मैं भी प्रेमी जी से सहमत नहीं हूँ। कुन्दकुन्द के '**वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं**' (स.सा./गा.१) ये वचन प्रमाण हैं कि उन्होंने किसी नये आम्नाय या सम्प्रदाय का प्रवर्तन नहीं किया था अर्थात् जैनधर्म को वेदान्त के साँचे में नहीं ढाला था, बल्कि **श्रुतकेवली भद्रबाहु** ने जैसा उपदेश दिया था, वैसा ही उन्होंने अपने प्राभृतग्रन्थों में प्ररूपित किया है। इसका सप्रमाण प्रतिपादन दशम अध्याय (प्र.४/शी.२) में **पं० दलसुख मालवणिया** के 'दार्शनिक विकासवाद' के निरसन-प्रसंग में द्रष्टव्य है। तथा कोई भी दिगम्बराचार्य उनके द्वारा प्ररूपित वस्तुतत्त्व से असहमत नहीं था, अपितु सभी आचार्य उनके वचनों को प्रमाणस्वरूप मानते थे। इसीलिए प्रथम शताब्दी ई० के भगवती-आराधनाकार **शिवार्य** से लेकर सभी उत्तरकालीन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में कुन्दकुन्द की गाथाएँ आत्मसात् की हैं अथवा प्रमाणरूप में उद्धृत की हैं। इसके प्रमाण दशम अध्याय में द्रष्टव्य हैं। अतः वीरसेन, जिनसेन आदि के द्वारा कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख न किये जाने का यह तीसरा कारण भी असंगत है।

२.४. नाम-अनुल्लेख का कारण : नाम से अनभिज्ञता

वीरसेन स्वामी ने 'षट्खण्डागम' की धवलाटीका में न केवल कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का नामोल्लेख किया है, अपितु उनके वचन प्रमाणरूप में भी उद्धृत किये हैं। और इस प्रकार उन्होंने '**वक्तृप्रामाण्याद् वचनप्रामाण्यम्**' इस स्वमान्य न्याय के अनुसार **कुन्दकुन्द** को प्रामाणिक वक्ता स्वीकार किया है। कुन्दकुन्द ने जैनदर्शन के जिस **द्रव्यगुणपर्यायात्मक अद्वैतवाद** का स्पष्टीकरण किया है, उसका स्पष्टीकरण वीरसेन स्वामी

---

११. पं. सुखलाल जी संघवी : तत्त्वार्थसूत्र (विवेचनसहित)/प्रस्तावना/पृष्ठ ७३-७४।

१२. "Also why his unacceptable teachings were not refuted by any scholar and how it came about that his works continued to be copied even when disrecognized, for over the long centuries." The Date of Kundkundācārya, Aspects of Jainology, Vol III, p.189.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ने भी किया है और कुन्दकुन्द के वचन से उसकी पुष्टि की है।[१३] अतः कुन्दकुन्द के दार्शनिक विचारों से कोई भी असहमत नहीं था, अपितु सभी उत्तरवर्ती ग्रन्थकार उनके अनुगामी थे। फिर भी उन्होंने उनके नाम की चर्चा नहीं की।

इसका एक ही कारण प्रतीत होता है। वह कारण है समयसारादि ग्रन्थों में उनके कर्त्ता कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख न होना और मुनिसंघों में भी यह प्रसिद्ध न हो पाना या इस प्रसिद्धि का लुप्त हो जाना कि उक्त ग्रन्थों के कर्त्ता कुन्दकुन्द हैं। जैसे **तत्त्वार्थसूत्र** में उसके कर्त्ता **गृध्रपिच्छ** के नाम का उल्लेख न होने से और यह प्रसिद्ध न होने से कि उसके कर्त्ता गृध्रपिच्छ हैं, टीकाकार **पूज्यपाद स्वामी** (५वीं शती ई०) और **भट्ट अकलंकदेव** (७वीं शती ई०) भी उनसे अपरिचित रहे आये, जिसके फलस्वरूप वे अपनी टीकाओं में तत्त्वार्थसूत्रकार के रूप में उनका नाम निर्दिष्ट नहीं कर सके, वैसे ही समयसारादि ग्रन्थों में **कुन्दकुन्द** के नाम का उल्लेख न होने से तथा यह प्रसिद्ध न होने से कि उन ग्रन्थों के रचयिता कुन्दकुन्द हैं, दसवीं शताब्दी ई० के टीकाकार **आचार्य अमृतचन्द्र** भी इस तथ्य से अनभिज्ञ रहे कि समयसारादि महान् ग्रन्थों के कर्त्ता वही आचार्य कुन्दकुन्द हैं, जिनसे **कुन्दकुन्दान्वय** नाम का विशाल अन्वय प्रसूत हुआ।

जिस प्रकार बहुत समय बाद आठवीं शती ई० में धवलाटीका के कर्त्ता **वीरसेन स्वामी** ने किसी प्राचीन लिखित स्रोत से यह ज्ञात होने पर कि तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता **आचार्य गृध्रपिच्छ** हैं, धवलाटीका में इसका उल्लेख किया है,[१४] उसी प्रकार बारहवीं शती ई० में किसी प्राचीन ग्रन्थादि से यह जानकारी प्राप्त होने पर कि समयसारादि ग्रन्थों के निर्माता वही महान् **कुन्दकुन्द** हैं, जिनके नाम से कुन्दकुन्दान्वय प्रवाहित हुआ है, **आचार्य जयसेन** ने अपनी टीकाओं में उन ग्रन्थों के निर्माता के रूप में आचार्य कुन्दकुन्द के नाम की चर्चा की है। आठवीं शती ई० से पहले के सभी ग्रन्थकार और टीकाकार इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि 'तत्त्वार्थसूत्र' के कर्त्ता आचार्य गृध्रपिच्छ हैं और बारहवीं शताब्दी ई० के पूर्ववर्ती समस्त ग्रन्थकर्त्ताओं और टीकाकारों को यह

---

१३. "तत्र योऽसौ द्रव्यार्थिकनयः स त्रिविधो नैगमसङ्ग्रहव्यवहारभेदेन। तत्र सत्तादिना यः सर्वस्य पर्यायकलङ्काभावेन अद्वैतत्वमध्यवस्यति शुद्धद्रव्यार्थिकः स सङ्ग्रहः। अत्रोपयोगिनी गाथा-

सत्ता सव्वपयत्था सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।
भंगुप्पायधुवत्ता सप्पडिवक्खा हवदि एक्का॥"

(धवलाटीका/षट्खण्डागम/पु.९/४,१,४५/पृ.१७०-१७१। यहाँ उद्धृत गाथा 'पञ्चास्तिकाय' की ८ वीं गाथा है।)

१४. क- "तह गिद्धपिंछाइरियप्पयासिदतच्चत्थसुत्ते वि 'वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य' इदि दव्वकालो परूविदो।" धवलाटीका/षट्खण्डागम/पु.४/१,५,१/पृ.३१६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ज्ञान नहीं था कि समयसारादि ग्रन्थ आचार्य कुन्दकुन्द की लेखनी से प्रसूत हुए हैं। इसका प्रमाण **प्रवचनसार** की निम्नलिखित गाथा की अमृतचन्द्रकृत टीका में मिलता है—

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥ १/१॥

अनुवाद—"यह मैं उन वर्धमानस्वामी को प्रणाम करता हूँ, जो सुरेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों के द्वारा वन्दित हैं, जिन्होंने घातिकर्मों के मल को धो डाला है तथा जो धर्मतीर्थ के कर्त्ता हैं।"

यहाँ **'एस'** (**एषः अहम्** = **यह मैं**) सर्वनाम 'प्रवचनसार' ग्रन्थ के कर्त्ता के लिए प्रयुक्त हुआ है। टीकाकार अमृतचन्द्र सूरि को इसकी व्याख्या ग्रन्थकार कुन्दकुन्द के नाम का निर्देश करके करनी चाहिए थी, जैसे "**यह मैं कुन्दकुन्द --- वर्धमान स्वामी को प्रणाम करता हूँ।**" किन्तु उन्होंने "**एष स्वसंवेदनप्रत्यक्षो दर्शनज्ञान-सामान्यात्माहं --- श्रीवर्धमानदेवं प्रणमामि**" (**यह स्वसंवेदनप्रत्यक्ष दर्शनज्ञानस्वरूप आत्मा मैं --- श्रीवर्धमान स्वामी को प्रणाम करता हूँ**), इन शब्दों में की है। अर्थात् उन्होंने कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख नहीं किया। इसका कारण न तो यह हो सकता है कि कुन्दकुन्द से उन्हें कोई द्वेष था और न यह कि टीकाकार द्वारा ग्रन्थकर्त्ता के नाम का उल्लेख करने की परम्परा नहीं थी। अन्यथानुपपत्ति से केवल यही कारण उभरकर सामने आता है कि टीकाकार अमृतचन्द्र सूरि इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि 'प्रवचनसार' के कर्त्ता वही कुन्दकुन्द हैं, जिनके नाम से प्रसिद्ध कुन्दकुन्दान्वय प्रचलित हुआ है।

आचार्य जयसेन ने **'एस'** सर्वनाम **शिवकुमार** नामक राजा के लिए प्रयुक्त माना है।[१५] जो संगत नहीं है,[१६] क्योंकि ग्रन्थ की आद्य गाथाएँ मंगलाचरणरूप हैं और उनका प्रयोग ग्रन्थकार ही करता है। स्वयं जयसेन ने प्रवचनसार के द्वितीय अधिकार की

ख— आठवीं-नौवीं शताब्दी ई० के आचार्य विद्यानंद ने 'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक' में तथा ग्यारहवीं शती ई० के वादिराजसूरि ने 'पार्श्वनाथचरित' में भी गृद्धपिच्छ को ही तत्त्वार्थसूत्र का कर्त्ता बतलाया है। (सिद्धा० पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री सर्वार्थसिद्धि/ प्रस्तावना / पृ.५७-६०)।

१५. अथ कश्चिदासन्नभव्यः शिवकुमारनामा---भगवतः पञ्चपरमेष्ठिनो--- प्रणम्य परमचारित्रमाश्रयामीति प्रतिज्ञां करोति।" तात्पर्यवृत्ति / पातनिका प्रवचनसार / १/ १-५।

१६. उक्त असंगति का परिहार आचार्य जयसेन ने इस प्रकार किया है-"किं च पूर्वं ग्रन्थप्रारम्भकाले साम्यमाश्रयामीति शिवकुमारमहाराजनामा प्रतिज्ञां करोतीति भणितम्। इदानीं तु ममात्मना

अन्तिम गाथा की तात्पर्यवृत्ति में लिखा है कि आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचनसार के कर्त्ता हैं और शिवकुमार महाराज श्रोता।[१७] उन्होंने समयसार तथा पंचास्तिकाय की तात्पर्यवृत्ति के आरंभ में भी यह उल्लेख कर दिया है कि इन ग्रन्थों की रचना आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा हुई है। किन्तु अमृतचन्द्र सूरि ने तीनों ग्रन्थों की टीका में कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया कि वे ग्रन्थ कुन्दकुन्ददेव द्वारा रचे गये हैं। इससे स्पष्ट है कि आचार्य अमृतचन्द्र को यह ज्ञात नहीं था कि समयसारादि ग्रन्थों के रचयिता आचार्य कुन्दकुन्द हैं और इससे स्पष्ट होता है कि उनके समय में मुनिसंघों में भी उक्त प्रकार की प्रसिद्धि नहीं थी। आचार्य अमृतचन्द्र के समकालीन **दर्शनसार** के कर्त्ता **देवसेन** ने केवल इतना लिखा है कि "विदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर सीमन्धरस्वामी के समवसरण में जाकर श्री पद्मनन्दिनाथ (कुन्दकुन्द स्वामी) ने जो दिव्यज्ञान प्राप्त किया था, उसके द्वारा यदि वे बोध न देते, तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते ?"[१८] लगभग इसी समय (१०वीं शती ई०) के आचार्य **इन्द्रनन्दी** ने **श्रुतावतार** (कारिका १६०-१६१) में कहा है कि कुण्डकुन्दपुर के पद्मनन्दी ने षट्खण्डागम के आदि के तीन खण्डों पर **परिकर्म** नामक ग्रन्थ की रचना की थी। किन्तु इन दोनों आचार्यों ने कुन्दकुन्द के द्वारा समयसारादि ग्रन्थ रचे जाने की बात नहीं कही। सर्वप्रथम ईसा की बारहवीं सदी में **आचार्य जयसेन** ने कुन्दकुन्द को उक्त ग्रन्थों का रचयिता बतलाया है और उनके कुछ समय बाद १२ वीं शती ई० में ही हुए **माइल्लधवल** ने लिखा है कि मैंने कुन्दकुन्दाचार्य-रचित शास्त्रों से सारभूत अर्थ ग्रहणकर **द्रव्यस्वभाव-प्रकाशक-नयचक्र** की रचना की है।[१९] उन्होंने **पंचास्तिकाय** आदि ग्रन्थों को आगम कहकर, उनसे अनेक उद्धरण भी दिये हैं।[२०] इससे ज्ञात होता है कि जयसेन को कुन्दकुन्द

चारित्रं प्रतिपन्नमिति पूर्वापरविरोधः। परिहारमाह-ग्रन्थप्रारम्भात् पूर्वमेव दीक्षा गृहीता तिष्ठति, परं किन्तु ग्रन्थकरणव्याजेन क्वाप्यात्मानं भावनापरिणतं दर्शयति, क्वापि शिवकुमारमहाराजं, क्वाप्यन्यं भव्यजीवं वा। तेन कारणेनात्र ग्रन्थे पुरुषनियमो नास्ति, कालनियमो नास्तीत्यभिप्रायः।" तात्पर्यवृत्ति / प्रवचनसार / ३ / १।

१७. "**किं च 'उवसंपयामि सम्मं' इत्यादि** --- प्रतिज्ञां --- कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पुनर्ज्ञानदर्शनाधिकारद्वयरूपग्रन्थसमाप्तिरूपेण समाप्तिं नीता, शिवकुमारमहाराजेन तु तद्ग्रन्थश्रवणेन च।" तात्पर्यवृत्ति / प्रवचनसार / २ / १०८।

१८. जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥ ४३॥ दर्शनसार।

१९. "श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृतशास्त्रात् सारार्थं परिगृह्य स्वपरोपकाराय द्रव्यस्वभावप्रकाशकं नयचक्रं मोक्षमार्गं कुर्वन् ---।" द्रव्यस्वभावप्रकाशक-नयचक्र / उत्थानिका / गाथा १।

२०. "उक्तं च आगमे-
चरियं चरदि सगं सो जो परदव्वप्पभावरहिदप्पा।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के समयसारादि ग्रन्थों के रचयिता होने की जानकारी किसी प्राचीन लिखित स्रोत से प्राप्त हुई थी। इस तरह यह बात समझ में आ जाती है कि ईसा की बारहवीं शताब्दी से पहले के ग्रन्थकारों ने कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख क्यों नहीं किया। इसका एक मात्र कारण उनका इस बात से अनभिज्ञ होना था कि समयसारादि ग्रन्थों के कर्त्ता वही कुन्दकुन्द हैं, जिनके नाम से कुन्दकुन्दान्वय प्रसूत हुआ है।

अतः दसवीं शती ई० के पूर्व तक कुन्दकुन्द के ग्रन्थों पर टीका का न लिखा जाना तथा बारहवीं शती ई० के पूर्व तक ग्रन्थकारों द्वारा कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख न किया जाना इस बात का प्रमाण नहीं है कि कुन्दकुन्द दसवीं शताब्दी ई० के सौ दो सौ वर्ष पूर्व ही हुए थे। कुन्दकुन्द के ग्रन्थों पर पहली टीका भले ही दसवीं शती ई० में लिखी गई हो, पर उनके ग्रन्थों की गाथाएँ ईसा की पहली, दूसरी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं आदि शताब्दियों में रचित **भगवती-आराधना** आदि अनेक ग्रंथों में आत्मसात् की गयी हैं अथवा प्रमाणरूप में उद्धृत की गयी हैं।[२१] यह इस बात का ज्वलंत प्रमाण है कि कुन्दकुन्द ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी (ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध तथा ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध) में हुए थे।

जहाँ तक टीका के न लिखे जाने का प्रश्न है, उसका कारण यह प्रतीत होता है कि कुन्दकुन्द के कुछ ही समय बाद जैनसिद्धान्त को संक्षेप एवं सरल भाषा में प्रस्तुत करनेवाला **तत्त्वार्थसूत्र** जैसा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सामने आ गया। वह इतना लोकप्रिय हुआ कि उसने आचार्यों को उसी पर टीकाएँ लिखने के लिए प्रेरित किया। इसीलिए हम देखते हैं कि **पूज्यपादस्वामी** (५वीं शती ई०) के पहले से ही उस पर टीकाएँ लिखी जाने लगीं और यह क्रम **श्रुतसागरसूरि** (१५वीं शती ई०) तक अनवरत चलता रहा। फलस्वरूप १०वीं शती ई० के पूर्व तक **कुन्दकुन्द** के अध्यात्मप्रधान ग्रन्थों पर टीका का अवसर नहीं आ पाया।

निष्कर्ष यह कि **आचार्य कुन्दकुन्द** न तो यापनीयपरम्परा में दीक्षित होकर उससे अलग हुए थे, न ही उन्होंने भट्टारकसम्प्रदाय को अंगीकर कर बाद में उसका परित्याग किया था। वे शुरू से ही दिगम्बराचार्य **श्रुतकेवली भद्रबाहु** की परम्परा में दीक्षित हुए थे और अन्त तक उसी में स्थित रहे।

दंसणणाणवियप्पो अवियप्पं चावि अप्पादो॥ १५९॥ पंचास्तिकाय।''
द्रव्यस्वभावप्रकाशक-नयचक्र / गाथा ४०४ के समर्थन में उद्धृत।

२१. देखिये, आगे दशम अध्याय / प्रथम प्रकरण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दशम अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दशम अध्याय

आचार्य कुन्दकुन्द का समय

प्रथम प्रकरण

ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में होने के प्रमाण

१

इण्डि. ऐण्टि. पट्टावली के अनुसार ईसापूर्वोत्तर प्रथम शती

अष्टम अध्याय में हम देख चुके हैं कि **प्रो० हार्नले** द्वारा **दि इण्डियन एण्टिक्वेरी** में प्रकाशित नन्दिसंघीय पट्टावली के अनुसार **आचार्य कुन्दकुन्द** ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में अर्थात् ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध और ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए थे। उनका जन्म ईसा से ५२ वर्ष पूर्व हुआ था, ११ वर्ष की आयु में मुनिदीक्षा ग्रहण की और ईसा से ८ वर्ष पहले ४४ वर्ष की अवस्था में आचार्यपद पर प्रतिष्ठित हुए। ५१ वर्ष, १० मास और १० दिन तक आचार्य पद पर आसीन रहे। उसके ५ दिन बाद स्वर्ग सिधार गये। इस प्रकार उक्त पट्टावली में उनका जीवनकाल ९५ वर्ष, १० मास और १५ दिन दर्शाया गया है। **प्रो० हार्नले** ने इसी समय को प्रामाणिक माना है। **प्रो० ए० चक्रवर्ती नयनार** ने भी इस समय को ही मान्यता दी है।[१]

किन्तु **पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार** ने उक्त पट्टावली में अनेक दोष बतलाये हैं। वे लिखते हैं—"इसमें प्राचीन आचार्यों का समय और क्रम बहुत कुछ गड़बड़ में पाया जाता है। उदाहरण के लिये **पूज्यपाद** (देवनन्दी) के समय को ही लीजिये, पट्टावली में वह वि० सं० २५८ से ३०८ तक दिया है। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिये कि पट्टावली में आचार्य पूज्यपाद के **आचार्यपद** पर प्रतिष्ठित होने का समय ई० सन् २०० के करीब बतलाया है, परन्तु इतिहास में जैसा कि ऊपर जाहिर किया गया है, वह ४५० के करीब पाया जाता है, और इसलिये दोनों में करीब अढ़ाई

१. " If we take this date 8 B.C. as the reliable date of his accession to the pontificial chair then the date of his birth would be about 52 B.C. For, only in his forty - fourth year he became pontiff or an Ācārya." Pañcāstikāyasāra, The historical Introduction, p.V, by Prof. A. Chakravarti Nayanar.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सौ (२५०) वर्ष का भारी अन्तर है। इतिहास में पूज्यपाद के शिष्य **वज्रनन्दी** का उल्लेख मिलता है और यह भी उल्लेख मिलता है कि उन्होंने वि० सं० ५२६ में **द्राविडसंघ** की स्थापना की, परन्तु पट्टावली में पूज्यपाद के बाद दो आचार्यों (जयनन्दी और गुणनन्दी) का उल्लेख करके चौथे (१३) नम्बर पर वज्रनन्दी का नाम दिया है और साथ ही उनका समय भी वि० स० ३६४ से ३८६ तक बतलाया है। क्रमभेद के साथ-साथ इन दोनों समयों में भी परस्पर बहुत बड़ा अन्तर जान पड़ता है। इतिहास से **वसुनन्दी** का समय विक्रम की १२वीं शताब्दी मालूम होता है, परन्तु पट्टावली में ६ठी शताब्दी (५२५-५३१) दिया है। इस तरह जाँच करने से बहुत से आचार्यों का समयादिक इस पट्टावली में गलत पाया जाता है, जिसे विस्तार के साथ दिखलाकर यहाँ इस निबन्ध को तूल देने की जरूरत नहीं है। ऐसी हालत में पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि यह पट्टावली कितनी संदिग्धावस्था में है और केवल इसी के आधार पर किसी के समयादिक का निर्णय कैसे किया जा सकता है? **प्रोफेसर हार्नले**,[२] **डाक्टर पिटर्सन**[३] और **डॉ० सतीशचंद्र**[४] ने इस पट्टावली के आधार पर ही **उमास्वाति** को ईसा की पहली शताब्दी का विद्वान् लिखा है और उससे यह मालूम होता है कि उन्होंने इस पट्टावली की कोई विशेष जाँच नहीं की, वैसे ही उसके रंग-ढंग पर से उसे ठीक मान लिया है।'' (स्वामी समन्तभद्र / पृ.१४५-१४६)।

यह सत्य है कि उपर्युक्त पट्टावली में कुछ आचार्यों का समय और क्रम त्रुटिपूर्ण है। तथापि उसमें कुन्दकुन्द से लेकर चित्तौड़पट्ट के महेन्द्रकीर्ति (क्र० १०२, वि० सं० १९३८ = ई० सन् १८८१) तक कुन्दकुन्दान्वय में जितने पट्टधर हुए हैं, उनके अस्तित्व में कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि उनका अस्तित्व अन्य पट्टावलियों एवं शिलालेखों से भी प्रमाणित है और उनका निर्दिष्ट पट्टकाल भी असंभव प्रतीत नहीं होता। अतः यदि कुन्दकुन्द का स्थितिकाल ईसापूर्वोत्तर प्रथम शती से नीचे लाया जाता है, तो इण्डियन एण्टिक्वेरी-पट्टावली में निर्दिष्ट १२८ पट्टधरों में से ५७ (१८+३९) का अस्तित्व मिथ्या घटित होता है, जो मिथ्या नहीं है। इसका सयुक्तिक प्रतिपादन अष्टम अध्याय के तृतीय प्रकरण (शीर्षक ६) में किया जा चुका है। अतः उक्त पट्टावली में निर्दिष्ट आचार्यों के समय एवं क्रम में संशोधन कर लेने के बाद भी कुन्दकुन्द का समय ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी से नीचे नहीं लाया जा सकता।

उक्त पट्टावली में उमास्वाति के पश्चात् लोहाचार्य का नाम निर्दिष्ट है, जब कि नन्दिसंघ की प्राकृत पट्टावली में वह भद्रबाहु (द्वितीय) के पश्चात् है। इसका समाधान

२. The Indian Antiquary, Vol. XX, pp, 341-351.

३. Peterson's fourth report on Sanskrit manuscripts p,XVI.

४. History of the Mediaeval school of Indian Logic, pp., 8,9.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मुख्तार जी के अनुसार यह हो सकता है कि श्रवणबेल्गोल के कितने ही शिलालेखों में उमास्वाति के प्रधान शिष्य-रूप से 'बलाकपिच्छ' का ही नाम दिया है। सम्भवत: लोहाचार्य उनका ही नामान्तर होगा। (स्वामी समन्तभद्र/पृ.१४५)।

मुख्तार जी ने इस शंका का भी निवारण किया है कि विक्रम की प्रथम शताब्दी (ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध) में एकांगधरों का अस्तित्व था, जब कि कुन्दकुन्द एकांगधर नहीं थे, अत: उक्त समय में कुन्दकुन्द का अस्तित्व नहीं माना जा सकता। मुख्तार जी का कथन है कि "अंगज्ञानी न होने पर भी कुन्दकुन्द का अंगज्ञानियों के समय में होना कोई असंभव या अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। उस समय भी दूसरे ऐसे विद्वान् जरूर होते रहे हैं, जो एक भी अंग के पाठी नहीं थे।" (स्वामी समन्तभद्र/पृ.१७८)।

इस प्रकार 'दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी' में प्रकाशित पट्टावली में कुन्दकुन्द का जो अस्तित्वकाल दर्शाया गया है वह किसी भी प्रकार बाधित नहीं होता। उक्त पट्टावली के अनेक दोषों की ओर इंगित करते हुए भी मुख्तार जी का यह कथन महत्त्वपूर्ण है कि "फिर भी उसमें उल्लिखित अनेक समयों के सत्य होने की संभावना है और इसलिए हमें यह देखना चाहिए कि कुन्दकुन्द के उक्त समय की सत्यता में प्रकारान्तर से कोई बाधा आती है या नहीं ?" (स्वामी समन्तभद्र / पृ.१७६)।

यहाँ वे प्रमाण उपस्थित किये जा रहे हैं, जिनसे उक्त पट्टावली में कुन्दकुन्द का जो समय (ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी) बतलाया गया है, उसकी दृढ़ता से पुष्टि होती। वे प्रमाण साहित्य और अभिलेखों में उपलब्ध हैं।

२

प्र. श. ई. की 'भगवती-आराधना' में कुन्दकुन्द की गाथाएँ

२.१. भगवती-आराधना का रचनाकाल

प्राय: सभी विद्वानों ने भगवती-आराधना को अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ माना है। पं० नाथूराम जी प्रेमी लिखते हैं—"**भगवती-आराधना** की रचना कब हुई थी, इसके स्पष्ट जानने का कोई साधन उपलब्ध नहीं है, परन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह बहुत प्राचीन ग्रन्थ है।[५] --- आचार्य वट्टकेर का **मूलाचार** और यह **भगवती-आराधना** दोनों ग्रन्थ उस समय के हैं, जब मुनिसंघ और उसकी परम्परा अविच्छिन्नरूप

५. 'भगवती-आराधना और उसकी टीकाएँ'/ 'अनेकान्त'/ वर्ष १, किरण ३/ वि. सं.१९८६/ पृष्ठ १४८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

से चली आ रही थी और जैनधर्म की दिगम्बर और श्वेताम्बर नाम की मुख्य शाखाएँ एक-दूसरे से इतनी अधिक जुदा और कटुभावापन्न नहीं हो गई थीं, जितनी कि आगे चलकर हो गईं। इन दोनों ही ग्रन्थों में ऐसी सैकड़ों गाथाएँ हैं, जो श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलती हैं और जो दोनों सम्प्रदायों के जुदा होने के इतिहास की खोज करनेवालों को बहुत सहायता दे सकती हैं।''[६]

पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में प्रेमी जी के मत का समर्थन इन शब्दों में किया है—''इसमें (भगवती-आराधना में) ग्रन्थकर्ता शिवार्य ने अपना जो विशेषण 'पाणितलभोजी' दिया है, उससे इतना तो साफ ध्वनित होता है कि इस ग्रन्थ की रचना उस समय हुई है, जब कि जैन समाज में करतलभोजियों के अतिरिक्त मुनियों का एक दूसरा सम्प्रदाय पात्र में भोजन करनेवाला भी उत्पन्न हो गया था। उसी से अपने को भिन्न दिखलाने के लिए इस विशेषण के प्रयोग की जरूरत पड़ी है। यह सम्प्रदायभेद दिगम्बर और श्वेताम्बर-भेद है, जिसका समय उभय सम्प्रदायों द्वारा क्रमशः वि० सं० १३६ तथा वी० नि० सं० ६०९ (वि० सं० १३९) बतलाया जाता है। इससे यह ग्रन्थ इस भेदारम्भ-समय के कुछ बाद का अथवा इसके करीब का रचा हुआ है, ऐसा जान पड़ता है।''[७]

मुनि कल्याणविजय जी ने भी निम्नलिखित वक्तव्य में भगवती-आराधना को प्राचीन ग्रन्थ कहा है—''यद्यपि शिवभूति ने वस्त्रपात्र न रखने का उत्कृष्ट जिनकल्प स्वीकारा था, तथापि आगे जाकर उन्हें अनुभव हुआ कि इस प्रकार का उत्कृष्ट मार्ग अधिक समय तक चलना कठिन है। अत एव उन्होंने साधुओं के आपवादिक लिंग को भी स्वीकार किया। पाठकगण हमारी इस बात को कोरी कल्पना न समझें, क्योंकि इसी सम्प्रदाय के प्राचीन ग्रन्थों से यह बात प्रमाणित होती है। दिगम्बर-सम्प्रदाय के

---

६. वही / पृष्ठ १४९।

७. क—'भगवती आराधना और उसकी टीकाएँ'/'अनेकान्त'/वर्ष १/किरण ३/वि.सं.१९८६ / पादटिप्पणी / पृ.१४८।

ख—प्रस्तुत ग्रन्थ के 'दिगम्बर-श्वेताम्बरभेद का इतिहास' अध्याय में सप्रमाण दर्शाया गया है कि दिगम्बर-श्वेताम्बरभेद अन्तिम अनुबद्ध केवली जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् ही हो गया था। देवसेन ने 'दर्शनसार' में उक्त भेद का काल जो वि.सं. १३६ बतलाया है। वह प्रामाणिक नहीं है। इसी प्रकार श्वेताम्बरग्रन्थों में जो वीर नि.सं. ६०९ (वि.सं.१३९) में बोटिक शिवभूति को दिगम्बरसम्प्रदाय का प्रवर्तक वर्णित किया गया है, वह भी समीचीन नहीं है। बोटिक शिवभूति दिगम्बरमत का प्रवर्तक नहीं था, अपितु उसने श्वेताम्बरमत को छोड़कर दिगम्बरमत स्वीकार किया था। इसका निरूपण द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

धुरन्धर आचार्य आर्य शिव, जो कि स्वयं हस्तभोजी थे, अपने 'भगवती-आराधना' ग्रन्थ में लिखते हैं—'जो औत्सर्गिक लिङ्ग में रहनेवाला हो, उसके लिए तो वह है ही, पर आपवादिक लिंगवाले को भी संथारा लेने के समय औत्सर्गिक लिङ्ग (नग्नता) धारण करना श्रेष्ठ है।'' (श्र.भ.म./पृ.२९६)।

मुनि जी ने शिवभूति को यापनीयसम्प्रदाय का संस्थापक मानकर ये उद्गार व्यक्त किये हैं। किन्तु शिवभूति यापनीयसम्प्रदाय का संस्थापक नहीं था, अपितु उसने श्वेताम्बरसम्प्रदाय को छोड़कर दिगम्बरसम्प्रदाय अपनाया था, इस तथ्य का सप्रमाण प्रदर्शन द्वितीय अध्याय में किया गया है। यहाँ केवल यह बात ध्यान देने योग्य है कि मुनि जी ने भगवती-आराधना को शिवभूति के विचारों का प्रतिनिधित्व करनेवाला ग्रन्थ माना है, जिससे सिद्ध होता है कि वह शिवभूति के बराबर ही पुराना है। यह संभव है कि उसकी रचना शिवभूति के ही द्वारा की गई हो। निम्नलिखित विद्वानों का ऐसा ही मत है।

प्रो० हीरालाल जी जैन अपने एक पुराने लेख में लिखते हैं—''आवश्यकमूल-भाष्य के अनुसार जिन शिवभूति ने बोडिकसंघ की स्थापना की थी, वे स्थविरावली में उल्लिखित आर्य शिवभूति तथा भगवती-आराधना के कर्त्ता शिवार्य एवं उमास्वाति के गुरु शिवश्री से अभिन्न हैं।''[८]

डॉ० ज्योतिप्रसाद जी जैन ने शिवार्य के समय का विचार करते हुए लिखा है—''शिवार्य सम्भवत: श्वेताम्बर-परम्परा के शिवभूति हैं। ये उत्तरापथ की मथुरा नगरी से सम्बद्ध हैं और इन्होंने कुछ समय तक पश्चिमी सिन्ध में निवास किया था। बहुत सम्भव है कि शिवार्य भी कुन्दकुन्द के समान सरस्वती-आन्दोलन से सम्बद्ध रहे हों। वस्तुत: शिवार्य ऐसे जैनमुनियों की शाखा से सम्बन्धित हैं, जो उन दिनों न तो दिगम्बरशाखा के ही अन्तर्गत थी और न श्वेताम्बर शाखा के ही। वे यापनीयसंघ के आचार्य थे। अतएव मथुरा-अभिलेखों से प्राप्त संकेतों के आधार पर इनका समय ई० सन् की प्रथम शताब्दी माना जा सकता है।''[९]

शिवार्य यापनीय-परम्परा के आचार्य नहीं थे, अपितु वे दिगम्बर ही थे, इसके प्रमाण त्रयोदश अध्याय में द्रष्टव्य हैं। हाँ, यह हो सकता है कि वे श्वेताम्बरपरम्परा के वही बोटिक शिवभूति हों, जिन्होंने श्वेताम्बरमत छोड़कर दिगम्बरमत स्वीकार कर

८. 'जैन इतिहास का एक विलुप्त अध्याय' (दिगम्बर जैन सिद्धान्तदर्पण (द्वितीय अंश) / सम्पादक : श्री रामप्रसाद शास्त्री / बम्बई / १२ दिसम्बर, १९४४ / पृष्ठ १०)।

९. The Jain Sources of the History of Ancient India, pp.130-31 (तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा / खण्ड २ / पृ.१२७ से उद्धृत)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

लिया था और दिगम्बर मुनि बन गये थे, दिगम्बर मुनि बनने के बाद उन्होंने ही 'भगवती-आराधना' की रचना की हो।

इस प्रकार पं० नाथूराम जी प्रेमी एवं पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने भगवती-आराधना का रचना काल वि० सं० १३९ (ई० सन् ८२) माना है तथा शेष विद्वान् भी भगवती-आराधना के कर्त्ता शिवार्य को बोटिक शिवभूति से अभिन्न मान कर इसी समय में भगवती-आराधना की रचना होने के निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, क्योंकि बोटिक शिवभूति ने वीर नि० सं० ६०९ अर्थात् ई० सन् ८२ में ही दिगम्बरमत ग्रहण किया था। इस तरह 'भगवती-आराधना' प्रथम शताब्दी ई० के उत्तरार्ध की कृति है। पर वह इसी समय रचे गये मूलाचार से निश्चित ही पूर्ववर्ती है, क्योंकि **मूलाचार** में **आराधनानिर्युक्ति** के नाम से **भगवती-आराधना** का उल्लेख किया गया है। यथा—

आराहणणिज्जुत्ती मरणविभत्ती य संगहत्थुदिओ।
पच्चक्खाणावासयधम्मकहाओ य एरिसओ॥ २७९॥

अनुवाद—"अस्वाध्याय काल में आराधनानिर्युक्ति (आराधना का कथन करने वाला ग्रन्थ), मरणविभक्ति (सत्रह प्रकार के मरण का प्रतिपादक ग्रन्थ), संग्रहग्रन्थ, स्तुतिग्रन्थ, प्रत्याख्यानग्रन्थ, आवश्यकक्रिया-प्रतिपादकग्रन्थ, धर्मकथाग्रन्थ तथा ऐसे ही अन्य ग्रन्थ पढ़े जा सकते हैं।"

दिगम्बर साहित्य में **निर्युक्ति** का अर्थ शास्त्र है।[१०] अतः उक्त गाथा में 'आराधना-निर्युक्ति' शब्द के द्वारा 'भगवती-आराधना' नामक शास्त्र का निर्देश किया गया है। डॉ० सागरमल जी ने उपर्युक्त गाथा में 'आराधना' शब्द से 'भगवती-आराधना' का ही उल्लेख माना है। वे लिखते हैं—

"आराधना के नाम से सुपरिचित ग्रन्थ शिवार्य का भगवती-आराधना या मूलाराधना है। यह सुस्पष्ट है कि भगवती-आराधना मूलतः दिगम्बरपरम्परा का ग्रन्थ न होकर यापनीयसंघ का ग्रन्थ है। मूलाचार में जिस 'आराधना' का निर्देश किया गया है, वह संभवतः भगवती-आराधना हो, क्योंकि 'मूलाचार' भी उसी यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ प्रतीत होता है और मूलाचार के रचनाकार ने सर्वप्रथम उसी ग्रन्थ का उल्लेख किया है।"(जै.ध.या.स./पृ. १३७)।

यद्यपि **भगवती-आराधना** और **मूलाचार** दोनों यापनीयपरम्परा के नहीं, अपितु दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थ हैं, इसके प्रमाण इन्हीं नामोंवाले उत्तरवर्ती अध्यायों में द्रष्टव्य हैं, तथापि डॉक्टर सा० का यह कथन युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि 'दोनों एक ही

१०. देखिए , अध्याय १५ / प्रकरण २ / शीर्षक ९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

(दिगम्बर) परम्परा के ग्रन्थ हैं,' इसलिए मूलाचार के कर्ता ने उक्त गाथा में दिगम्बर-परम्परा के ही भगवती-आराधना ग्रन्थ का उल्लेख किया है। यह उल्लेख 'भगवती-आराधना' के 'मूलाचार' से पूर्ववर्ती होने का संकेत करता है।

इस प्रकार उपुर्यक्त सभी विद्वानों ने भगवती-आराधना का रचनाकाल ईसा की प्रथम शताब्दी माना है। किन्तु डॉ० सागरमल जी का कथन है कि भगवती-आराधना में पाँचवी शती ई० से पूर्व के श्वेताम्बर-प्रकीर्णक ग्रन्थों की गाथाएँ मिलती हैं, पाँचवी शताब्दी ई० में विकसित गुणस्थान-सिद्धान्त का उल्लेख है और 'विजहना' (मुनि के शव को जंगल में रख देने) की चर्चा है, जो छठी शती ई० के श्वेताम्बरीय भाष्यग्रन्थों और ७वीं शती ई० के चूर्णि-साहित्य में भी है। अतः भगवती-आराधना इसी समय की रचना है। (जै.ध.या.स./ पृ.१२९-१३०)।

किन्तु प्रकीर्णकों की रचना भगवती-आराधना की रचना के अनन्तर हुई है तथा डॉक्टर सा० की गुणस्थान-सिद्धान्त के विकसित होने की मान्यता कपोलकल्पित है एवं ग्रन्थों के वर्ण्य-विषय की समानता उनके रचनाकाल की समानता का प्रमाण नहीं है, इन तथ्यों का सप्रमाण-सयुक्तिक प्रतिपादन 'भगवती-आराधना' नामक तेरहवें अध्याय में द्रष्टव्य है। अतः डॉक्टर सा० की यह मान्यता मिथ्या है कि भगवती-आराधना की रचना भाष्य और चूर्णियों के रचनाकाल (६-७वीं शती ई०) में हुई है। उपर्युक्त विद्वानों की युक्तियाँ उसे प्रथम शती ई० की रचना सिद्ध करती हैं।

२.२. भगवती-आराधना में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण

ईसा की प्रथम शती के उत्तरार्ध में रचित भगवती-आराधना में कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से अनेक गाथाएँ संगृहीत की गयी हैं। निम्नलिखित गाथाएँ तो ज्यों की त्यों पायी जाती हैं—

दंसणभट्ठा भट्ठा दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्ठा दंसणभट्ठा ण सिज्झंति॥

बा.अ.१९ / दं.पा.३ / भ.आ. ७३७।

जा रायादिणियत्ती मणस्स जाणीहि तम्मणोगुत्ती।
अलियादिणियत्तिं वा मोणं वा होइ वचिगुत्ती॥

नियमसार ६९ / भ.आ. ११८१।

कायकिरियाणियत्ती काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती।
हिंसादिणियत्ती वा सरीरगुत्ती हवदि दिट्ठा॥

नियमसार ७० / भ.आ. ११८२।

अद्धुवमसरणमेयत्तमण्णसंसारलोयमसुचित्तं।
आसवसंवरणिज्जरधम्मं बोहिं च चिंतेज्जो॥

बारस अणुवेक्खा २ / भ.आ. १७१०।

अधोलिखित गाथाएँ कुछ पाठभेद के साथ उपलब्ध होती हैं—

जम्मसमुद्दे बहुदोसवीचिए दुक्खजलचराकिण्णे।
जीवस्स परिब्भमणं कम्मासवकारणं होदि॥ ५६॥

बारस अणुवेक्खा।

जम्मसमुद्दे बहुदोसवीचिए दुक्खजलयराइण्णे।
जीवस्स दु परिब्भमणम्मि कारणं आसवो होदि॥ १८१५॥

भगवती-आराधना।

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि उस्सासमेत्तेण॥ ३/३८॥

प्रवचनसार।

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेदि अंतोमुहुत्तेण॥ १०८॥

भगवती-आराधना।

महिलालोयण×पुव्वरइ-सरणसंसत्त-वसहि-विकहाहिं।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि॥ ३४॥

चारित्तपाहुड।

महिलालोयणपुव्वरदि-सरणसंसत्त-वसहि-विकहाहिं।
पणिदरसेहिं य विरदी भावणा पंच बंभस्स॥ १२०४॥

भगवती-आराधना।

अपरिग्गह-समणुण्णेसु सद्द-परिसरसरूव-गंधेसु।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति॥ ३५॥

चारित्तपाहुड।

अपरिग्गहस्स मुणिणो सद्दफरिसरसरूवगंधेसु।
रागद्दोसादीणं परिहारो भावणा हुंति॥ १२०५॥

भगवती-आराधना।

ओगाढगाढणिचिदो पुग्गलकायेहिं सव्वदो लोगो।
सुहमेहि बादरेहि य अप्पाओग्गेहिं जोग्गेहिं॥

प्रवचनसार २ / ७६, पंचास्तिकाय ६४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ओगाढगाढणिचिदो पुग्गलदव्वेहिं सव्वदो लोगो।
सुहमेहिं बादरेहिं य दिस्सादिस्सेहिं य तहेव॥ १८१८॥

भगवती-आराधना।

ये गाथाएँ कुन्दकुन्द के ही ग्रन्थों से भगवती-आराधना में ली गई हैं, इसका प्रमाण यह है कि उपर्युक्त गाथाओं में '**दंसणभट्ठा**' और '**जं अण्णाणी**' को छोड़कर कोई भी गाथा श्वेताम्बरग्रन्थों में नहीं मिलती। '**अद्धुवमसरण**' गाथा तो ऐसी है कि इसमें वर्णित बारह अनुप्रेक्षाएँ भी किसी श्वेताम्बर-आगम में एक साथ उपलब्ध नहीं हैं। '**दंसणभट्ठा**' गाथा श्वेताम्बरीय प्रकीर्णक ग्रन्थ **भक्तपरिज्ञा** में हैं, किन्तु उसका रचनाकाल ११वीं शताब्दी ई० है। (देखिये, पा. टि. ७६)। अतः उससे भगवती-आराधना में नहीं आ सकती। '**जं अण्णाणी कम्मं**' गाथा विमलसूरि के **पउमचरिय**[११] तथा श्वेताम्बरीय प्रकीर्णक ग्रन्थ **तित्थोगालिय** या **तित्थोगालियपयन्नु**[१२] (तीर्थोद्गार) में भी है। इनमें से **तित्थोगालियपयन्नु** को **मुनि श्री कल्याणविजय जी** ने विक्रम की चौथी शताब्दी के अन्त और पाँचवी शताब्दी के आरंभ में रचित स्वीकार किया है।[१३] "**विमलसूरि** ने **पउमचरिय** का रचनाकाल यद्यपि वीरनिर्वाण सं० ५३० (ई० सन् ३) बतलाया है, किन्तु **डॉ० हर्मन जेकोबी** ने ग्रन्थ का अन्तःपरीक्षण कर इसका रचनाकाल ईसवी सन् की तीसरी-चौथी शताब्दी सिद्ध किया है। **डॉ० कीथ, डॉ० वूल्लर** आदि पाश्चात्य विद्वान्, **मुनि जिनविजय जी, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, पं० परमानन्द शास्त्री** आदि जैन विद्वान् तथा **डॉ० के० एच० ध्रुव** आदि जैनेतर विद्वान् भी इस ग्रन्थ को अर्वाचीन मानने के पक्ष में हैं।"[१४] इस विषय में माननीया श्वेताम्बर **साध्वी संघमित्रा जी** अपना मत प्रकट करते हुए लिखती हैं—"मेरे अपने अभिमत से काव्यगत कालसंवत् (पउमचरिय-काव्यसम्बन्धी कालसंवत्) के निरसन में **डॉ० हर्मन जेकोबी** आदि विद्वानों द्वारा प्रदत्त युक्तियों में सर्वाधिक सबल आधार **विमलसूरि** की गुरु-परम्परा का **नाइल कुल** से सम्बन्धित होना है। इस शाखा का जन्म वी० नि० ५८०-६०० से पहले किसी प्रकार

---

११. जं अन्नाणतवस्सी खवेइ भवसयसहस्स कोडेहिं।
कम्मं तं तिहि गुत्तो खवेइ नाणी मुहुत्तेण॥ १२०, १७७॥ पउमचरिय।

१२. जं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वासकोडीहिं।
तं नाणी तिहि गुत्तो खवेइ उस्सासमेत्तेण॥ १२१३॥ तित्थोगालियपयन्नु।

१३. क— डॉ. जगदीशचन्द्र जैन : प्राकृत साहित्य का इतिहास / पृष्ठ १२३।
ख— "तित्थोगालिय में उल्लिखित अनेक मान्यताएँ श्वेताम्बरसम्प्रदाय में मान्य नहीं और आगमों के व्युच्छिन्न होने का क्रम भी संगत प्रतीत नहीं होता : मुनि पुण्यविजय जी 'जैन आगमधर और प्राकृत वाङ्मय' ज्ञानांजलि, ४७।" वही / पा.टि./ पृ.१२३।

१४. साध्वी संघमित्रा : जैनधर्म के प्रभावक आचार्य / पृ.२४४,२४५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

से भी संभव नहीं है। **डॉ० के० आर० चन्द्र** ने काव्यगत वी० नि० सं० ५३० को वि० सं० ५३० मान लेने का अभिमत प्रकट किया है। यह अभिमत सब दृष्टियों से समुचित अनुभूत होता है।''[१४]

चूँकि **भगवती-आराधना** का रचनाकाल विद्वानों ने ईसा की प्रथम शताब्दी निर्धारित किया है, अतः उसमें उपर्युक्त गाथा उससे तीन सौ वर्ष बाद रचे गये **पउमचरिय** और **तित्थोगालिय** से नहीं आ सकती। इसलिए सिद्ध है कि वह **प्रवचनसार** से ही **भगवती-आराधना** में ग्रहण की गई है। तथा वह प्रवचनसार में तो प्रकरण के अनुरूप है, किन्तु भगवती-आराधना में प्रकरण से मेल नहीं खाती। प्रवचनसार की उक्त गाथा (३/३८) में त्रिगुप्ति (संयम) से प्रचुर कर्मों का शीघ्र क्षय होना बतलाया गया है और वह संयम के प्रकरण में ही निबद्ध है, जो पूर्वापर गाथाओं से स्पष्ट है। किन्तु भगवती-आराधना में वह स्वाध्यायतप के प्रकरण में रखी गई है, जो प्रकरणानुरूप नहीं है। इससे सिद्ध है कि भगवती-आराधना में वह प्रवचनसार से ही ग्रहण की गई है।

२.३. कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में 'भगवती-आराधना' की गाथाएँ नहीं

'**दंसणभट्ठा**' गाथा कुन्दकुन्द के **दंसणपाहुड** से ही भगवती-आराधना में आयी है, यह निम्नलिखित हेतुओं से सिद्ध होता है—

क—**दंसणपाहुड** में **दंसण** और **भट्ठा** शब्दों के प्रयोग के अनुरूप शब्दगत प्रसंग विद्यमान है, जबकि भगवती-आराधना में नहीं है। सर्वप्रथम ग्रन्थ का नाम ही **दंसणपाहुड** या **दंसणमग्गो** है और मंगलाचरण में ही '**दंसणमग्गं वोच्छामि**' कहकर **दंसण** शब्द का प्रयोग किया गया है। उसके बाद दूसरी गाथा में '**दंसणमूलो धम्मो**' वाक्यांश में **दंसण** शब्द का प्रयोग है। इस प्रकार तीसरी गाथा में '**दंसण भट्ठा भट्ठा**' शब्दों के प्रयोग के अनुरूप शब्दगत प्रसंग दंसणपाहुड में उपलब्ध होता है, जबकि भगवती-आराधना में '**दंसण भट्ठो भट्ठो**' गाथा के पूर्व किसी भी गाथा में **दंसण** शब्द का प्रयोग नहीं है। यह गाथा **सम्यक्त्वभावना** के अन्तर्गत है और इसकी पूर्ववर्ती तथा उत्तरवर्ती सभी गाथाओं में **सम्मत्त** शब्द ही प्रयुक्त हुआ है। अतः इस गाथा में अचानक **दंसण** शब्द का प्रयोग शब्दगत प्रसंग के विरुद्ध हो जाने से अस्वाभाविक लगता है। इससे स्पष्ट होता है कि **दंसणभट्ठो** गाथा भगवती-आराधनाकार द्वारा रचित नहीं है, अपितु दंसणपाहुड से उठाकर वहाँ रख दी गई है तथा वैसी ही एक गाथा और ग्रन्थकार ने रचकर उसके बाद जोड़ दी है।

ख—दूसरी बात यह है कि दंसणपाहुड की दूसरी गाथा में '**दंसणमूलो धम्मो**' (सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है) इस जैनशासन के प्राणभूत महान् सिद्धान्त का प्रतिपादन

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किया गया है। सम्यग्दर्शन धर्म (मोक्षमार्ग) का मूल क्यों है, इस प्रश्न का समाधान किया जाना आवश्यक था। इस हेतु '**दंसणभट्ठा भट्ठा**', '**सम्मत्तरयणभट्ठा**' तथा '**सम्मत्तविरहिया**' ये तीन उत्तरवर्ती गाथाएँ रची गई हैं। पहिली में बतलाया गया है कि सम्यग्दर्शन से च्युत हो जाने पर चारित्र के रहते हुए भी मोक्ष नहीं हो सकता, दूसरी में कहा गया है कि सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हो जाने पर बहुत से शास्त्रों का ज्ञान होने पर भी मुक्ति संभव नहीं है तथा तीसरी में दर्शाया गया है कि सम्यग्दर्शन के बिना उग्र तप करने पर भी मोक्ष असंभव है। इन तीनों गाथाओं से इस प्रश्न का समाधान हो जाता है कि सम्यग्दर्शन धर्म (मोक्षमार्ग) का मूल क्यों है ? इस प्रकार '**दंसणभट्ठा भट्ठा**' गाथा के रचे जाने के लिए दंसणपाहुड में अर्थगत प्रसंग या हेतु भी विद्यमान है, जिसका भगवती-आराधना में अभाव है।

यद्यपि भगवती-आराधना की उक्त गाथा से पूर्व की दो गाथाओं में सम्यक्त्व को ज्ञान, चारित्र, वीर्य, और तप का आधार तथा मूल कहा गया है।[१५] तथापि उसे धर्म (मोक्षमार्ग) का मूल न कहे जाने से '**दंसणभट्ठो भट्ठो**' गाथा का कथन उस तरह सहेतुक सिद्ध नहीं होता, जिस तरह से दंसणपाहुड में होता है। इसके अतिरिक्त सम्यक्त्व को ज्ञान, चारित्र आदि का मूल कहनेवाली गाथा के पश्चात् निम्नलिखित गाथा आ जाती है।

भावाणुराग-पेमाणुराग-मज्जाणुराग-रत्तो व्वा।
धम्माणुरागरत्तो य होहि जिणसासणे णिच्चं॥ ७३६॥

अनुवाद—"इस जगत् में कोई परपदार्थों का अनुरागी है, कोई स्नेहीजनों का प्रेमानुरागी है और कोई मद्यानुरागी है, किन्तु तुम जिनशासन में रहकर सदा धर्मानुरागी रहो।"

इससे प्रसंग बदल जाता है और इस गाथा के बाद रखी गई '**दंसणभट्ठो भट्ठो**' गाथा अर्थ की दृष्टि से पूर्वापरसम्बन्ध-रहित हो जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि यह गाथा शिवार्य ने दंसणपाहुड से लेकर बीच में प्रविष्ट की है।

ग—दंसणपाहुड में **दंसणभट्ठा** तथा **भट्ठा** शब्दों का प्रयोग अनेक गाथाओं में किया गया है, जैसे—'**दंसणभट्ठा**' (गाथा ३), '**सम्मत्तरयणभट्ठा**' (गाथा ४), '**जिणदंसणभट्ठा**' (गाथा १०), '**दंसणेसु भट्ठा**' (गाथा १२) तथा निम्नलिखित गाथा में—

---

१५. मा कासि तं पमादं सम्मत्ते सव्वदुक्खणासयरे।
सम्मत्तं खु पदिट्ठा णाणचरणवीरियतवाणं॥ ७३४॥
णगरस्स जह दुवारं मुहस्स चक्खू तरुस्स जह मूलं।
तह जाण सुसम्मत्तं णाणचरणवीरियतवाणं॥ ७३५॥ भगवती-आराधना।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।
एदे भट्ठविभट्ठा सेसं पि जणं विणासंति॥ ८॥

इसके विपरीत भगवती-आराधना में दंसणपाहुड से ग्रहण की गई उक्त गाथा और उसके आधार पर शिवार्य द्वारा रची गई वैसी ही एक गाथा के अतिरिक्त और किसी भी गाथा में उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता। "**दंसणभट्ठा भट्ठा, दंसणभट्ठस्स णत्थि णिव्वाणं**" इस गाथा से विपरीतरूपेण शब्दार्थगत साम्य रखनेवाली गाथा भी कुन्दकुन्द के **मोक्खपाहुड** में मिलती है। यथा—"**दंसणसुद्धो सुद्धो, दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं**" (गा.३९)।

ये उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि **दंसणभट्ठा, णाणभट्ठा, चरियभट्ठा** तथा '**दंसणभट्ठा भट्ठा**' से विपरीत शब्दार्थवाले '**दंसणसुद्धा सुद्धा**' आदि प्रयोग कुन्दकुन्द के विशिष्ट प्रयोग हैं। यह उनकी अपनी शब्दावली है। ये प्रयोग उनकी शैली के अंग हैं। अतः '**दंसणभट्ठा भट्ठा**' गाथा कुन्दकुन्दकृत ही है, जो शिवार्य द्वारा अपना ली गई है।

घ—भगवती-आराधनाकार ने '**दंसणभट्ठा भट्ठा**' गाथा के अनुकरण पर निम्नलिखित गाथा स्वयं निबद्ध की है—

दंसणभट्ठो भट्ठो ण हु भट्ठो होइ चरणभट्ठो हु।
दंसणममुयत्तस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे॥ ७३८॥

इसमें शिवार्य ने कुन्दकुन्द के भाव को और स्पष्ट किया है। '**दंसणभट्ठा भट्ठा**' कुन्दकुन्द की इस उक्ति से '**ण हु भट्ठो होइ चरणभट्ठो हु**' यह अर्थ स्वतः ध्वनित होता है। तथा '**दंसणभट्ठा ण सिज्झंति**' इस उक्ति से '**दंसणममुयत्तस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे**' (सम्यग्दर्शन का परित्याग न करनेवाले का संसार में पतन नहीं होता) यह अर्थ अपने आप आक्षिप्त होता है। तथापि शिवार्य ने इन अर्थों को शब्दों के द्वारा वाच्य बनाकर सर्वथा स्पष्ट कर दिया है ।

यदि आचार्य कुन्दकुन्द ने दंसणपाहुड की '**दंसणभट्ठा भट्ठा**' गाथा स्वयं न रची होती, अपितु भगवती-आराधना से ग्रहण की होती, तो वे शिवार्य द्वारा रचित उत्तरगाथा भी ग्रहण करते, क्योंकि वह शब्द और अर्थ में पूर्व गाथा के ही समान है। किन्तु वह दंसणपाहुड और बारस अणुवेक्खा दोनों में पूर्वगाथा के साथ उपलब्ध नहीं है, इससे सिद्ध है कि कुन्दकुन्द ने पूर्वगाथा भगवती-आराधना से ग्रहण नहीं की है, अपितु स्वयं रची है तथा भगवती-आराधना के कर्त्ता ने ही दंसणपाहुड से उसे संगृहीत किया है और उसके अनुकरण पर उक्त दूसरी गाथा की रचना की है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तथा **शुद्धनय**,[१६] **भूतार्थनय, निश्चयनय, परमार्थनय, व्यवहारनय, अभूतार्थनय** यह भी आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार आदि अध्यात्मग्रन्थों की अध्यात्म-भाषागत पदावली है और इसके प्रणेता आचार्य कुन्दकुन्द ही हैं, क्योंकि अध्यात्मग्रन्थों के आद्यकर्त्ता वे ही हैं। भगवती-आराधना की गाथाओं पर इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, यथा—

सुद्धणया पुण णाणं मिच्छादिट्ठिस्स वेंति अण्णाणं।
तम्हा मिच्छादिट्ठी णाणस्साराहओ णेव॥ ५॥ भ.आ.।

निम्नलिखित गाथांश भी तुलनीय हैं—

मोत्तूण णिच्छयट्ठं **ववहारेण** विदुसा पवट्टंति॥ १५६॥ स.सा.।
मोत्तूण रागदोसे **ववहारं** पट्ठवेइ सो तस्स॥ ४५३॥ भ.आ.।
अप्पाणमयाणंतो ----------॥ २०२॥ स.सा.।
ववहारमयाणंतो ----------॥ ४५४॥ भ.आ.।

इन उदाहरणों से भी प्रकट होता है कि भगवती-आराधना पर कुन्दकुन्द की भाषाशैली का प्रभाव है। इस प्रकार ये सारे प्रमाण सिद्ध करते हैं कि पूर्वोक्त गाथाएँ कुन्दकुन्द के ही ग्रन्थों से भगवती-आराधना में संगृहीत की गई हैं। यतः भगवती-आराधना का रचनाकाल ईसा की प्रथम शताब्दी का उत्तरार्ध है, अतः सिद्ध है कि कुन्दकुन्द उससे पूर्व हुए थे।

३
प्र. श. ई. के मूलाचार में कुन्दकुन्द की गाथाएँ

३.१. मूलाचार का रचनाकाल प्रथम शताब्दी ई०

पूर्व में भगवती-आराधना के रचनाकाल पर दृष्टिपात करते समय पं० नाथूराम जी प्रेमी के वचन उद्धृत किये गये हैं, जिनमें कहा गया है कि **मूलाचार** उतना ही पुराना ग्रन्थ है, जितनी **भगवती-आराधना** और भगवती-आराधना को प्रेमी जी, मुख्तार जी, मुनि श्री कल्याणविजय जी, प्रो० हीरालाल जी एवं डॉ० ज्योतिप्रसाद जी ने प्रथम शताब्दी ई० की कृति माना है। वहाँ यह भी दर्शाया गया है कि भगवती-आराधना की रचना मूलाचार से कुछ पहले हुई है। अतः भगवती-आराधना को प्रथम शती ई० के तृतीय चरण में और मूलाचार को चतुर्थ चरण में रचित मानना युक्तिसंगत

१६.क— "ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ॥" ११॥ समयसार।
ख— "सुद्धणयस्स दु जीवे ----------॥" १४१॥ समयसार।

होगा। मूलाचार के प्रथम शती ई० में रचित होने की पुष्टि निम्नलिखित प्रमाणों से होती है—

३.२. प्र.-द्वि. श. ई. के तत्त्वार्थसूत्र में मूलाचार का अनुकरण

षट्खण्डागम-परिशीलन के कर्त्ता **पं० बालचन्द्र जी शास्त्री** ने मूलाचार और तत्त्वार्थसूत्र का तुलनात्मक अध्ययन कर बतलाया है कि तत्त्वार्थसूत्र में व्रत नियमादि की प्ररूपणा मूलाचार के पंचाचाराधिकार के आधार पर तथा योनि, आयु, लेश्या व बन्ध आदि की प्ररूपणा उसके पर्याप्ति-अधिकार के आधार पर हुई है, क्योंकि दोनों की निरूपणाओं में शब्द, अर्थ और विषयक्रम का अत्यधिक साम्य है (षट्. परि./ पृ.१८२)। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

तत्त्वार्थसूत्र — **अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रसपरित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः।** (त.सू./९/१९)।

मूलाचार — **अणसण अवमोदरियं रसपरिचाओ य वुत्तिपरिसंखा।**
कायस्स वि परितावो विवित्तसयणासणं छट्ठं॥ ३४६॥

भग.आरा. — **अणसण अवमोयरियं चाओ य रसाण वुत्तिपरिसंखा।**
कायकिलेसो सेज्जा य विवित्ता बाहिरतवो सो ॥ २१०॥

व्याख्याप्रज्ञ. — **बाहिरए तवे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अणसण ऊणोयरिया भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ कायकिलेसो पडिसंलीणया वज्झो (तवो होई)।** २५/७/८०२।[१७]

इन उदाहरणों में तत्त्वार्थसूत्र में वर्णित बाह्यतप के भेदों का साम्य मूलाचारवर्णित भेदों से है। भगवती-आराधना में **विविक्तशय्या** के साथ **आसन** शब्द का उल्लेख नहीं है। तथा श्वेताम्बरीय **व्याख्याप्रज्ञप्ति** में उल्लिखित ऊनोदर, भिक्षाचर्या और प्रतिसंलीनता (विविक्तशयनासन) ये नाम तत्त्वार्थसूत्रगत नामों से विसदृश हैं। इससे निश्चित होता है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने उपर्युक्त सूत्र की रचना में मूलाचार का अनुकरण किया है।

तत्त्वार्थसूत्र —**प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।** ९/२०।

मूलाचार —**पायच्छित्तं विणयं वेज्जावच्चं तहेव सज्झायं।**
झाणं च विउस्सग्गो अब्भंतरओ तवो एसो॥ ३६०॥

व्याख्याप्रज्ञ.—**अब्भिंतरए तवे छव्विहे पण्णत्ते तं जहा-पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं तहेव सज्झाओ झाणं विउसग्गो।** २५/७/८०२।[१८]

१७. तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय / ९/१९/पृ.२१४।
१८. वही / ९/२०/पृ.२१४।

उक्त तीनों ग्रन्थों के वर्णन में साम्य है, तथापि तत्त्वार्थसूत्रकार ने बाह्यतप-भेदसूचक सूत्र की रचना मूलाचार के आधार पर की है, इससे अनुमान होता है कि आभ्यन्तरतप भेदसूचक सूत्र की रचना में भी उसी का अनुकरण किया है।

स्वाध्याय के पाँचभेदों का नामोल्लेख करनेवाले "**वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः**" (९/२५) इस 'तत्त्वार्थ' के सूत्र की रचना **मूलाचार** की निम्नगाथा के आधार पर की गई है—

परियट्टणाय वायण पडिच्छणाणुपेहणा य धम्मकहा।
थुदिमंगलसंजुत्तो पंचविहो होइ सज्झाओ॥ ३९३॥

अनुवाद—"परिवर्तन (आम्नाय)[१९] वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा यह पाँच प्रकार का स्वाध्याय है, जो स्तुतिमंगलपूर्वक किया जाता है।"

कुन्दकुन्दसाहित्य और भगवती-आराधना में इस प्रकार की गाथा उपलब्ध नहीं है। व्याख्याप्रज्ञप्ति (श० २५/उ०७/सू० ८०२) में उक्त पाँच भेदों का वर्णन है,[२०] किन्तु पूर्व उदाहरण इसी अनुमान पर पहुँचाते हैं कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने उक्त सूत्र में भी मूलाचार का ही अनुकरण किया है।

मूलाचार की निम्नलिखित गाथा में दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय, तपोविनय और उपचारविनय, ये पाँच प्रकार के विनयतप बतलाये गये हैं—

दंसणणाणे विणओ चरित्ततवओवचारिओ विणओ।
पंचविहो खलु विणओ पंचमगइणायगो भणिओ॥ ३६४॥

इनमें से तपोविनय का चारित्रविनय में अन्तर्भाव कर तत्त्वार्थसूत्रकार ने इस गाथा के आधार पर "**ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः।**" (९/२३) सूत्र रचा है।

इस प्रकार की गाथा **भगवती-आराधना** में भी है—

विणओ पुण पंचविहो णिद्दिट्ठो णाणदंसणचरित्ते।
तवविणओ य चउत्थो चरिमो उवयारिओ विणओ॥ ११९॥

किन्तु हम ऊपर देख चुके हैं कि छह आभ्यन्तरतपों और पंचविध स्वाध्याय के नामों का निर्देश करनेवाली गाथाएँ केवल मूलाचार में हैं, कुन्दकुन्दसाहित्य और

---

१९. "**घोषशुद्धं परिवर्तनमाम्नायः**" (सर्वार्थसिद्धि ९/२५) अर्थात् उच्चारण-शुद्धिपूर्वक पाठ को बार-बार दुहराना आम्नाय है।

२०. तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय/९/२५/ पृ.२१७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भगवती-आराधना में नहीं। अतः मूलाचार की गाथाओं के आधार पर ही तत्त्वार्थसूत्रकार ने उक्त सूत्रों की रचना की है। इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने अन्यत्र भी भगवती-आराधना की बजाय मूलाचार का ही उपयोग किया है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति के निम्नलिखित वाक्य में सात प्रकार के विनयों का वर्णन किया गया है—"**विणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—णाणविणए दंसणविणए चरित्तविणए मणविणए वइविणए कायविणए लोगोवयारविणए।**" व्या. प्र./२५ / ७/८०२।

तत्त्वार्थसूत्र के चतुर्विध विनयों और व्याख्याप्रज्ञप्ति के सप्तविध विनयों में संख्या की दृष्टि से बहुत अन्तर है। अतः स्पष्ट है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने व्याख्याप्रज्ञप्ति का अनुकरण नहीं किया।

तत्त्वार्थसूत्र के बन्धहेतु, बन्धलक्षण, बन्धप्रकार तथा बन्धप्रकृतियों के मूलोत्तर-भेद-प्रतिपादक सूत्रों और मूलाचार की तद्विषयक गाथाओं में शब्द, अर्थ और वर्णनक्रम का घनिष्ठ साम्य है, जिससे यह बात छिपी नहीं रहती कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने उक्त सूत्रों की रचना में मूलाचार की गाथाओं का अनुकरण किया है।[२१] उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

तत्त्वार्थसूत्र — **मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः। ८/१।**

मूलाचार — **मिच्छादंसणअविरदिकसायजोगा हवंति बंधस्स।**
आऊसज्झवसाणं हेदवो ते दु णायव्वा॥ १२२५॥

तत्त्वार्थसूत्र — **सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः।८/२।**

मूलाचार — **जीवो कसायजुत्तो जोगादो कम्मणो दु जे जोग्गा।**
गेण्हइ पोग्गलदव्वे बंधो सो होदि णायव्वो॥ १२२६॥

तत्त्वार्थसूत्र — **प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः। ८/३।**

मूलाचार — **पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधो य चदुविहो होइ।**
दुविहो य पयडिबंधो मूलो तह उत्तरो चेव ॥ १२२७॥

तत्त्वार्थसूत्र — **आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः। ८/४।**

मूलाचार — **णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेदणीय मोहणियं।**
आउग-णामा-गोदं तहंतरायं च मूलाओ॥ १२२८॥

---

२१. षट्खण्डागम-परिशीलन / पृ.१८२-१८३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तत्त्वार्थसूत्र — **पञ्चनवद्व्यष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वारिंशद्-द्वि-पञ्चभेदा यथाक्रमम्। ८/५।**

मूलाचार — **पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चदुरो तहेव वादालं।**
दोण्णि य पंच य भणिया पयडीओ उत्तरा चेव॥ १२२९॥

इसके बाद ज्ञानावरणादि की उत्तरप्रकृतियों का नामनिर्देश तथा उनकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थितियों का निरूपण भी दोनों ग्रन्थों (तत्त्वार्थसूत्र ८/६-२०, मूलाचार / गा. १२३०-४५) में समान क्रम और समान शब्दों में किया गया है।[२२] केवलज्ञानोत्पत्तिविषयक इन निरूपणों में भी बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव है[२३]—

तत्त्वार्थसूत्र — **मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्। १०/१।**

मूलाचार — **मोहस्सावरणाणं खयेण अह अंतरायस्स य एव।**
उव्वज्जइ केवलयं पयासयं सव्वभावाणं॥ १२४८॥

इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्र का सम्पूर्ण अष्टम अध्याय मूलाचार के पर्याप्ति-अधिकार की लगभग २४ गाथाओं का अनुकृत रूप है। इसके अतिरिक्त जीवों की सचित्तादि योनियों, वेदव्यवस्था, लेश्यास्वामित्व एवं प्रवीचार आदि की प्ररूपणा भी तत्त्वार्थसूत्र में मूलाचार[२४] के आधार पर की गयी है। पंचमहाव्रतों की पच्चीस भावनाओं एवं पाँच समितियों के नाम-निर्देशक तत्त्वार्थसूत्र के सूत्र भी 'चारित्तपाहुड' (३२-३७), नियमसार (६१-६५), सूत्र के भगवती-आराधना (१२००-१२०५) या मूलाचार (३३७-३४१, १०) की गाथाओं के आधार पर निबद्ध किये गये हैं। भगवती-आराधना और मूलाचार की ये गाथाएँ सर्वथा सदृश हैं, चारित्तपाहुड की गाथाओं से भी इनकी पर्याप्त समानता है। **'महिला लोयण-पुव्वरइ'** गाथा तो चारित्तपाहुड (३४), भगवती-आराधना (१२०४) और मूलाचार (३४०) तीनों में ज्यों की त्यों है। तत्त्वार्थसूत्र के उपर्युक्त सूत्रों का जहाँ चारित्तपाहुड, भगवती-आराधना और मूलाचार की गाथाओं से शब्दगत और अर्थगत निकट सादृश्य है, वहाँ श्वेताम्बरीय समवायांग के वाक्यों से अल्पाधिक वैषम्य है,[२५] जिससे सिद्ध होता है कि उक्त सूत्रों की रचना चारित्तपाहुड आदि दिगम्बरग्रन्थों का अनुकरण कर की गयी है।

---

२२. वही / पृ. १८३।
२३. वही / पृ. १८३।
२४. मूलाचार / गाथा ११०१-११०३, ११३०-११३२, ११३६-११३८, ११४१-११४५।
२५. देखिए , उपाध्याय मुनि श्री आत्मारामकृत 'तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय'/ पृ० १५७-१६०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ये उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि **मूलाचार** की रचना प्रथम-द्वितीय शताब्दी ई० के **तत्त्वार्थसूत्र** से पहले हुई है, अतः वह प्रथम शताब्दी ई० के उत्तरार्ध का ग्रन्थ है।

३.३. मूलाचार में तत्त्वार्थसूत्र का अनुकरण नहीं

यहाँ यह शंका की जा सकती है कि संभव है मूलाचार के कर्त्ता ने ही तत्त्वार्थसूत्र का अनुकरण किया हो, किन्तु निम्नलिखित कारणों से यहा शंका निरस्त हो जाती है—

१. **तत्त्वार्थसूत्र** एक लघु संग्रहग्रन्थ है[२६] और **मूलाचार** आचार्यपरम्परा से प्राप्त उपदेश के आधार पर रचित मौलिक ग्रन्थ है। तत्त्वार्थसूत्रकार ने आचार्यप्रणीत ग्रन्थों से उन्हीं सामान्य तत्त्वों को चुनकर तत्त्वार्थसूत्र में संगृहीत किया है, जो आगम में प्रवेश के लिए प्रथमतः अध्येय हैं। ऐसे तत्त्वों को वे उन्हीं ग्रन्थों से चुन सकते थे, जिनमें प्रथमतः अध्येय सामान्य तत्त्वों का और उत्तरतः अध्येय विशेष तत्त्वों का समान-रूप से प्ररूपण हो। तत्त्वार्थसूत्रकार से पूर्ववर्ती ऐसे ग्रन्थ कसायपाहुड, षट्खण्डागम, कुन्दकुन्द-ग्रन्थ, भगवती-आराधना और मूलाचार ही हैं। अतः उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र के लिए इन्हीं ग्रन्थों से प्रारंभिक कक्षा में पठनीय विषयवस्तु चुनी है।

२. जैनपरम्परा में आगमग्रन्थ मूलतः प्राकृत भाषा में लिखे गये हैं। संस्कृत में ग्रन्थ लिखने का प्रचलन उत्तरकालीन है। और तत्त्वार्थसूत्र में जो सामान्य विषयवस्तु है, वह उपर्युक्त प्राकृत ग्रन्थों में ही उपलब्ध है। अतः अन्यथानुपपत्ति से सिद्ध है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने उपर्युक्त ग्रन्थों से ही तत्त्वार्थसूत्र की विषयवस्तु का चयन किया है।

३. यदि यह माना जाय कि मूलाचार के कर्त्ता ने ही तत्त्वार्थसूत्र से उक्त विषयवस्तु ग्रहण की है, तो पहला प्रश्न यह उठता है कि तब तत्त्वार्थसूत्रकार ने उसे कहाँ से ग्रहण किया? श्वेताम्बरग्रन्थों से ग्रहण करना संभव नहीं था, क्योंकि वे पाँचवी शताब्दी ई० में पुस्तकारूढ़ किये गये थे । डॉ० सागरमल जी ने भी यह बात स्वीकार की है। वे लिखते हैं—"श्वेताम्बरपरम्परा में मान्य वलभी-वाचना के जो आगम वर्तमान में प्रचलित हैं, वे भी इसका (तत्त्वार्थसूत्र का) आधार नहीं माने जा सकते, क्योंकि यह वाचना उमास्वाति के पश्चात् लगभग ईसा की पाँचवी शती के उत्तरार्ध में हुई है। आर्य स्कन्दिल की अध्यक्षता में हुई माथुरी वाचना के आगम इसका आधार हैं, ऐसा भी निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि एक तो यह वाचना भी

---

२६. तत्त्वार्थाधिगमाख्यं बह्वर्थं सङ्ग्रहं लघुग्रन्थम्।
वक्ष्यामि शिष्यहितमिममर्हद्वचनैकदेशस्य॥ २२॥ तत्त्वार्थाधिगमभाष्य / सम्बन्धकारिका।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उमास्वाति के किंचित् पश्चात् ईसा की चौथी शती में हुई है, दूसरे इसके आगम आज उपलब्ध नहीं हैं। संभावना यही है कि इस ग्रन्थ की रचना के आधार उच्चैर्नागर शाखा में प्रचलित फल्गुमित्र के काल के आगम रहे हों।" (जै.ध.या.स. / पृ.२४०)।

किन्तु, डॉ० सागरमल जी की यह संभावनामात्र है, प्रमाणसिद्ध तथ्य नहीं। फल्गुमित्र-कालीन आगम आज उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए उनका अस्तित्व ही सन्देहास्पद है। दूसरे, उनके अभाव में यह सिद्ध करने के लिए कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता कि वे **तत्त्वार्थसूत्र** की रचना के आधार थे। इसके अतिरिक्त वर्तमान में जो पाँचवीं शती ई० में पुस्तकारूढ़ किये गये आगम उपलब्ध हैं, उनमें उल्लिखित सूत्रादि का **तत्त्वार्थ** के सूत्रों से शब्द, अर्थ और वर्णन क्रम की दृष्टि से साम्य नहीं है। इसका प्रदर्शन ऊपर किया जा चुका है और **तत्त्वार्थसूत्र** नामक अध्याय में भी द्रष्टव्य है। अतः अन्यथानुपपत्ति से उक्त प्रश्न का समाधान केवल यही है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने तत्त्वार्थसूत्र की विषयवस्तु को उपर्युक्त दिगम्बरग्रन्थों से ही ग्रहण किया है।

दूसरा प्रश्न यह उठता है कि यदि मूलाचार के कर्त्ता ने उपर्युक्त विषयवस्तु को तत्त्वार्थसूत्र से ग्रहण किया है, तो उससे सम्बन्धित जो अन्य विषयवस्तु **मूलाचार** में है और तत्त्वार्थसूत्र में नहीं है, उसे कहाँ से उपलब्ध किया? जैसे—

मोहस्सावरणाणं खयेण अह अंतरायस्स य एव।
उव्वज्जइ केवलयं पयासयं सव्वभावाणं॥ १२४८॥

अनुवाद—"मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मों के क्षय से समस्त पदार्थों को प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उत्पन्न होता है।"

यह गाथा यदि **मूलाचार** के कर्त्ता ने तत्त्वार्थसूत्र के '**मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्**' इस सूत्र (१० / १) से अनुकृत की है, तो—

तत्तोरालियदेहो णामा गोदं च केवली भगवं।
आऊण वेदणीयं चदुहिं खिविइत्तु णीरओ होइ॥ १२४९॥

अनुवाद—"उसके बाद केवली भगवान् एक साथ औदारिक शरीर, नाम, गोत्र, आयु और वेदनीय इन चारों कर्मों का क्षय करके कर्मरजरहित हो जाते हैं।"

यह पूर्वोक्त गाथा की अनुपूरक गाथा **मूलाचारग्रन्थ** के कर्त्ता ने कहाँ से अनुकृत की? इस आशय का सूत्र तो तत्त्वार्थसूत्र में है ही नहीं। यदि यह गाथा उन्होंने आचार्य-परम्परा से प्राप्त उपदेश के आधार पर रची है, तो पूर्वगाथा (क्र० १२४८) भी आचार्य-परम्परा से प्राप्त उपदेश के आधार पर क्यों नहीं रच सकते थे? अवश्य रच सकते थे। अतः इस उत्तरगाथा से सिद्ध है कि पूर्वगाथा भी आचार्य वट्टकेर ने स्वयं ही

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

रची है और तत्त्वार्थसूत्रकार ने उसका अनुकरण कर "**मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरण---**" इत्यादि सूत्र निबद्ध किया है। इसी प्रकार **तत्त्वार्थसूत्र** के सूत्रों से सादृश्य रखनेवाली अन्य पूर्वोक्त गाथाएँ भी आचार्य वट्टकेर ने गुरुपरम्परा से प्राप्त उपदेश के आधार पर स्वयं निबद्ध की हैं और तत्त्वार्थसूत्रकार ने उनका अनुकरण कर तत्त्वार्थसूत्र के पूर्वोदाहृत सूत्र निर्मित किये हैं।

४. सर्वार्थसिद्धिकार पूज्यपाद स्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र के वचनों को प्रमाणित करने के लिए कुन्दकुन्द की गाथाओं को आगमप्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है। यथा- "**एक प्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम्**" (त. सू./५/१४) सूत्र की टीका में 'एक स्थान में पुद्गलों का अवगाह संभव है' इस तथ्य की पुष्टि के लिए **पञ्चास्तिकाय** की निम्ननिर्दिष्ट गाथा आगम-प्रमाण के रूप में इन वचनों के साथ प्रस्तुत की है—

"अवगाहनस्वभावत्वात् सूक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यवगाहो न विरुध्यते एकाप-वरके अनेकदीपप्रकाशावस्थानवत्। **आगमप्रामाण्याच्च** तथाऽध्यवसेयम्। तदुक्तम्—

ओगाढगाढणिचिओ पुग्गलकाएहि सव्वदो लोगो।
सुहुमेहिं बादरेहिं अणंताणंतेहिं विवहेहिं॥

पं. का./६४, प्र. सा. २/७६

इसी प्रकार पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि में "**प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः**" (त.सू./८/३) का अर्थ स्पष्ट करते हुए योग से प्रकृति-प्रदेशबन्ध और कषाय से स्थिति-अनुभाग-बन्ध होते हैं, इस मत का समर्थन **मूलाचार** की निम्नलिखित गाथा को उद्धृत करके किया है—

जोगा पयडि-पएसा ठिदिअणुभागा कसायदो कुणदि।
अपरिणदुच्छिण्णेसु य बंधट्ठिदिकारणं णत्थि॥ २४४॥

तथा "**सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः**" (त. सू. २/३२) की टीका में जीवों की ८४ लाख योनियों के होने की पुष्टि भी मूलाचार की इस गाथा से की है—

णिच्चिदरधादु सत्त य तरु दस विगलिंदियेसु छच्चेव।
सुरणरतिरिए चउरो चोद्दस मणुएसु सदसहस्सा॥ ११०६॥

इससे स्पष्ट होता है कि पंचास्तिकाय, मूलाचार, भगवती-आराधना आदि मौलिक आगमग्रन्थ हैं, जो आचार्यपरम्परा से प्राप्त श्रुतकेवली के उपदेश पर आश्रित हैं। अतः तत्त्वार्थसूत्रकार द्वारा ही मूलाचार से कुछ लेना युक्तियुक्त सिद्ध होता है, मूलाचार के कर्त्ता द्वारा तत्त्वार्थसूत्र से कुछ लिया जाना नहीं। यतः प्रथम-द्वितीय शताब्दी ई० के

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३.५. मूलाचार में श्वेताम्बर ग्रन्थों की गाथाएँ नहीं

डॉ० सागरमल जी लिखते हैं—"जिन ग्रन्थों के आधार पर मूलाचार की रचना हुई है, वे श्वेताम्बरपरम्परा के मान्य बृहत्प्रत्याख्यान, आतुरप्रत्याख्यान, आवश्यकनिर्युक्ति, जीवसमास आदि हैं, जिनकी सैकड़ों गाथाएँ शौरसेनी-रूपान्तरण के साथ इसमें गृहीत की गयी हैं। वस्तुतः मूलाचार श्वेताम्बर-परम्परा में मान्य निर्युक्तियों एवं प्रकीर्णकों की विषयवस्तु एवं सामग्री से निर्मित है।" (जै.ध.या.स. / पृ.१३१)।

वे आगे कहते हैं—"मूलाचार के षडावश्यक अधिकार में 'आवश्यकनिर्युक्ति' की ८० से अधिक गाथाएँ स्पष्टतः मिलती हैं। --- अधिकांश निर्युक्तियाँ भद्रबाहु-द्वितीय के द्वारा रचित हैं और इन भद्रबाहु का समय विक्रम की पाँचवीं शताब्दी है। इससे एक बात अवश्य स्पष्ट होती है कि मूलाचार विक्रम की छठी शताब्दी के पूर्व की रचना नहीं है।" (जै.ध.या.स. / पृ.१३८)।

माननीय विद्वान् का यह मत मान्य नहीं हो सकता, क्योंकि प्रमाण इसके विपरीत उपलब्ध होते हैं। विद्वान् श्वेताम्बरसाधु श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री एवं साध्वी संघमित्रा ने भद्रबाहु द्वितीय का समय विक्रम सं० ५६२ (ई० सन् ५०५) के लगभग बतलाया है।[२७] और पूर्व में सप्रमाण दर्शाया गया है कि प्रथम-द्वितीय शती ई० के तत्त्वार्थसूत्र में मूलाचारकी गाथाओं के आधार पर अनेक सूत्रों की रचना की गई है। द्वितीय शती ई० की तिलोयपण्णत्ती में देवियों कि आयु के विषय में मूलाचार के कर्त्ता का मत 'मूलाचार' नामोल्लेख-सहित प्रस्तुत किया गया है और पाँचवी शती ई० के पूज्यपाद स्वामी ने आठवें अध्याय के तीसरे सूत्र की सर्वार्थसिद्धि टीका में मूलाचार की **'जोगा पयडिपएसा'** गाथा (२४४) प्रमाणरूप में उद्धृत की है। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि मूलाचार की रचना विक्रम की छठी शताब्दी में रचित आवश्यकनिर्युक्ति से बहुत पहले ईसा की प्रथम शताब्दी में हो चुकी थी। अतः उसमें जो गाथाएँ आवश्यकनिर्युक्ति की गाथाओं से साम्य रखती हैं, उनका आवश्यकनिर्युक्ति से मूलाचार में आना संभव नहीं है, अपितु मूलाचार या भगवती-आराधना से ही आवश्यकनिर्युक्ति में जाना संभव है। अतः ऐसा ही हुआ है।

अनेक दिगम्बर और श्वेताम्बर विद्वानों का मत है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थों की जो गाथाएँ समान हैं, वे उन्हें अपनी विभाजनपूर्व-मूलपरम्परा से प्राप्त हुई हैं। इसलिए उन्हें किसी एक ने दूसरे से ग्रहण किया है, यह कहना उचित नहीं है।[२८] किन्तु, मेरा मत यह है कि जब पाँचवीं शती (४५४-४६६) ई० में श्री देवर्द्धिगणी

---

२७. जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा / पृ.४३८, जैनधर्म के प्रभावक आचार्य / पृ.३००।
२८. देखिए, आगे 'मूलाचार' नामक पञ्चदश अध्याय।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

क्षमाश्रमण द्वारा श्रुतिपरम्परागत समस्त अंगों और उपांगों को पुस्तकारूढ़ कर दिया गया और उनमें से किसी भी अंग या उपांग में उक्त समान गाथाएँ उपलब्ध नहीं हैं, जो कि 'आवश्यकनिर्युक्ति' आदि पाँचवीं शती ई० के बाद के ग्रन्थों में हैं, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि उक्त समान गाथाएँ श्वेताम्बर-परम्परा को अपनी मूल परम्परा से प्राप्त हुई हैं? वे गाथाएँ प्रथम शती ई० की भगवती-आराधना और मूलाचार की गाथाओं से समानता रखती हैं, अत: स्पष्ट है कि वे इन्हीं ग्रन्थों से उक्त श्वेताम्बरग्रन्थों में पहुँची हैं।

तथा श्वेताम्बर मान्य **आतुरप्रत्याख्यान** एवं **भक्तपरिज्ञा** का रचना काल ११वीं शती ई० है और उपलब्ध **महाप्रत्याख्यान** की रचना ५वीं शताब्दी ई० के बाद हुई है। अन्य प्रकीर्णक ग्रन्थ भी अर्वाचीन हैं, क्योंकि वे ५वीं शती ई० में आगमों के लिपिबद्ध होने के बाद ही लिखे गये हैं। इसके प्रमाण 'भगवती-आराधना' नामक अध्याय में दर्शनीय हैं। **जीवसमास** विक्रम की छठी शती में रचा गया है।[२९] अत: इन ग्रन्थों की सामग्री का भी प्रथम शती ई० के मूलाचार में आना असंभव है। मूलाचार और भगवती-आराधना से ही कोई सामग्री उक्त ग्रन्थों में जा सकती है। अत: समान गाथाएँ इन ग्रन्थों से ही उपर्युक्त श्वेताम्बर-प्रकीर्णक-ग्रन्थों में गयी हैं। इसलिए मूलाचार की रचना प्रथम शती ई० के उत्तरार्ध में हुई है, यह मत अबाधित रहता है।

डॉ० ज्योतिप्रसाद जी जैन लिखते हैं—"सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री प्रभृति सभी प्रौढ़शास्त्रज्ञ विद्वानों को मूलाचार की सर्वोपरि प्रामाणिकता एवं प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं है, और उनका कहना है कि उसे यदि स्वयं कुन्दकुन्द-प्रणीत नहीं भी माना जाय, तो भी वह कुन्दकुन्दकालीन (८ ई० पू०-४४ ई०) अर्थात् ईसवी सन् के प्रारंभकाल की रचना तो प्रतीत होती ही है।"[३०]

ज्योतिषाचार्य डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री का मत है कि आचार्य वट्टकेर का समय कुन्दकुन्द के समकालीन या उससे कुछ ही पश्चाद्वर्ती होना चाहिए।[३१]

इस प्रकार सभी विद्वान् उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर प्रथम शताब्दी ई० को ही मूलाचार का रचनाकाल स्वीकार करते हैं।

३.६. 'मूलाचार' में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण

मूलाचार में आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की इतनी अधिक गाथाएँ मिलती हैं

---

२९. जीवसमास / भूमिका-डॉ० सागरमल जैन / पृ०१ / पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, १९९८ ई०।
३०. मूलाचार (भारतीय ज्ञानपीठ) / प्रधान सम्पादकीय / पृ० ६।
३१. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्यपरम्परा / खण्ड२ / पृ.१२०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

और कुन्दकुन्द की शैली से इतना अधिक सादृश्य है कि कुछ विद्वान् इसे कुन्दकुन्द की ही कृति मानते हैं। डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने प्रवचनसार की प्रस्तावना (पृ.२५) में इसे कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की सूची में शामिल किया है और कहा है कि उन्हें दक्षिण भारत में मूलाचार की कुछ पाण्डुलिपियाँ देखने को मिली हैं, जिनमें उसके कर्त्ता का नाम कुन्दकुन्द बतलाया गया है। माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित मूलाचार की प्रति की अन्तिम पुष्पिका में भी उसे 'कुन्दकुन्दाचार्य-प्रणीत' कहा गया है। यथा—

''इति मूलाचारविवृतौ द्वादशोऽध्यायः। कुन्दकुन्दाचार्यप्रणीत-मूलाचाराख्य-विवृतिः। कृतिरियं वसुनन्दिनः श्रीश्रमणस्य।''[३२]

किन्तु मूलाचार की 'आचारवृत्ति' नामक टीका के कर्त्ता आचार्य वसुनन्दी ने वट्टकेराचार्य को उसका कर्त्ता बतलाया है। पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने **वट्टकेर** या **वट्टकेरि** शब्द को **प्रवर्तक** का प्राकृतरूप मानकर उसका अर्थ सन्मार्ग-प्रवर्तक किया है और उसे कुन्दकुन्द की उपाधि बतलाया है। इस प्रकार वे भी कुन्दकुन्द को ही मूलाचार का कर्ता मानते हैं।[३३] पं० परमानन्द जी शास्त्री ने भी अपने एक शोधलेख में कुन्दकुन्द को मूलाचार का कर्त्ता सिद्ध किया है।[३४] आर्यिका ज्ञानमती जी ने भी यद्यपि स्वानुवादित मूलाचार की प्रति में उसके रचयिता के रूप में आचार्य वट्टकेर का नाम प्रकाशित किया है, तथापि 'आद्य उपोद्घात' में उसे कुन्दकुन्द द्वारा ही रचित बतलाया है।[३५] किन्तु मेरी दृष्टि से आचार्य वट्टकेर ही मूलाचार के कर्त्ता हैं, कुन्दकुन्द नहीं। इसके कारणों पर आगे प्रकाश डाला जायेगा।

प्रथम शताब्दी ई० के मूलाचार में आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से अनेक गाथाएँ ज्यों की त्यों या किंचित् परिवर्तन करके ग्रहण की गई हैं, जो नीचे दर्शायी जा रही हैं। संक्षेप के लिए गाथाओं का केवल पूर्वार्ध ही उद्धृत किया जा रहा है—

१. णमिऊण सव्वसिद्धे झाणुत्तमखविददीहसंसारे। बा.अ.१ / मूला.६९३।

२. अद्धुवमसरणमेयत्तमण्णसंसारलोगमसुचित्तं। बा.अ.२ / मूला.४०३, ६९४।

३. एक्को करेदि कम्मं एक्को हिंडदि य दीहसंसारे। बा.अ.१४ / मूला.७०१।

४. अण्णो अण्णं सोयदि मदो त्ति मम णाहगो त्ति मण्णंतो। बा.अ.२२ / मूला.७०३।

---

३२. देखिए , पं० जुगलकिशोर मुख्तार : पुरातन जैनवाक्य सूची / प्रस्तावना / पृ०१८।

३३. वही / पृष्ठ १९।

३४. 'अनेकान्त' / वर्ष २ / किरण ३ / विक्रम सं० १९९५, सन् १९३८ / पृ० २२१-२२४।

३५. मूलाचार / पूर्वार्ध / भारतीय ज्ञानपीठ / आद्य उपोद्घात / पृष्ठ ३४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५. अण्णं इमं सरीरादिगं पि जं होज्ज बाहिरं दव्वं। बा.अ.२३ / मूला.७०४।

६. णिच्चदरधादु सत्त य तरु-दस-वियलिंदियेसु छच्चेव।
बा.अ.३५ / मूला.२२६,११०६।

७. संजोगविप्पजोगं लाहालाहं सुहं च दुक्खं च। बा.अ.३६ / मूला.७११।

८. मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति। बा.अ.४७ / मूला.२३७।

९. जा रायादिणियत्ती मणस्स जाणीहि तम्मणोगुत्ती। नि.सा.६९ / मूला.३३२।

१०. कायकिरियाणियत्ती काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती। नि.सा.७० / मूला.३३३।

११. ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो। नि.सा.९९ / मूला.४५।

१२. आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
नि.सा.१००/ स.सा.२७७ / भा.पा.५८ / मूला.४६।

१३. एगो य मरदि जीवो एगो य जीवदि सयं। नि.सा.१०१ / मूला.४७।

१४. एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
नि.सा.१०२ / भा.पा.५९ / मूला.४८।

१५. जं किंचि मे दुच्चरित्तं सव्वं तिविहेण वोसरे। नि.सा.१०३ / मूला.३९।

१६. सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केण वि। नि.सा.१०४ / मूला.४२।

१७. मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
नि.सा.२/ मूला.२०२।

१८. पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं। नि.सा.६२ / मूला.१२।

१९. पासुगभूमिपदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण। नि.सा.६५ / मूला.१५।

२०. णिक्कसायस्स दंतस्स सूरस्स ववसायिणो। नि.सा.१०५ / मूला.१०४।

२१. ण वसो अवसो अवसस्स कम्म वावस्सयं ति बोधव्वा।
नि.सा.१४२ / मूला.५१५।

२२. विरदो सव्वसावज्जे तिगुत्तो पिहिदिंदिओ। नि.सा.१२५ / मूला.५२४।

२३. जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा। नि.सा.१२६ / मूला.५२६।

२४. जस्स सण्णिहिदो अप्पा संजमे णियमे तवे। नि.सा.१२७ / मूला.५२५।

२५. जस्स रागो दु दोसो दु विगडिं ण जणेति दु। नि.सा.१२८ / मूला ५२७।

२६. जो दु अट्टं च रुद्दं च झाणं वज्जेदि णिच्चसा। नि.सा. १२९ / मूला.५३१।

२७. जो दु धम्मं च सुक्कं च झाणं झाएदि णिच्चसा। नि.सा.१३३ / मूला.५३१।

२८. भूयत्थेणभिगदा जीवजीवा य पुण्णपावं च। स.सा.१३ / मूला. २०३।

२९. रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो।
स.सा.१५० / प्र.सा.१७९ / मूला.२४७।

३०. काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं। लिं.पा.१ / मूला.५०२।

३१. गइ इंदियं च काए जोए वेए कसाय णाणे य। बो.पा.३३ / मूला.११९९।

३२. पंच वि इंदियपाणा मणवयकाएण तिण्णि बलपाणा। बो.पा.३५ / मूला.११९३।

३३. णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य। चा.पा.७ / मूला.२०१।

३४. जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं। दं.पा. १७ / मूला.९५।

३५. जोगणिमित्तं गहणं जोगो मणवयणकायसंभूदो। पं.का.१४८ / मूला.९६८।

कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की ये ३५ गाथाएँ मूलाचार में ग्रहण की गयी हैं।[३६]

३.७. मूलाचार में कुन्दकुन्द की शैली का अनुकरण

इन गाथाओं के अतिरिक्त कुन्दकुन्द की शब्दावली, वाक्यों एवं अलंकारों को भी मूलाचार में अपनाया गया है। यह उनकी शैली का अनुकरण है। यथा—

१

प्रवचनसार—**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं॥ १/८०॥**

मूलाचार —**जो जाणइ समवायं दव्वाण गुणाण पज्जयाणं च ॥ ५२२॥**

२

समयसार —**अपरिग्गहो अणिच्छो॥ २१०॥**

मूलाचार —**अपरिग्गहा अणिच्छा॥ ७८५॥**

---

३६. मूलाचार की गाथाओं का क्रमांक आर्यिकारत्न ज्ञानमती जी द्वारा अनुवादित एवं भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित 'मूलाचार' के अनुसार दिया गया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३

समयसार —**जीवणिबद्धा एए॥ ७४॥**

मूलाचार —**जीवणिबद्धाऽबद्धा॥ ९॥**

४

प्रवचनसार—**जो मोहरागदोसे णिहणदि उवलब्भ जोण्हमुवदेसं।**
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण॥ १/८८॥

मूलाचार —**अरहंतणमोक्कारं भावेण य जो करेदि पयदमदी।**
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण॥ ५०६॥

५

समयसार —**जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति।**
पोग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि॥ ८०॥

मूलाचार —**जीवपरिणामहेदू कम्मत्तण पोग्गला परिणमंति।**
ण दु णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियदि॥ ९६९॥

६

सुत्तपाहुड —**सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।**
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि॥ ३॥

सुत्तपाहुड —**पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।**
सच्चेयणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि॥ ४॥

मूलाचार —**सूई जहा ससुत्ता ण णस्सदि दु पमाददोसेण।**
एवं ससुत्तपुरिसो णु णस्सदि तहा पमाददोसेण ॥ ९७३॥

७

समयसार —**वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गईं पत्ते।**
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवली भणियं॥ १॥

मूलाचार —**वंदित्तु देवदेवं तिहुअणमहिदं च सव्वसिद्धाणं।**
वोच्छामि समयसारं सुण संखेवं जहावुत्तं॥ ८९४॥

पूर्वोक्त गाथाएँ कुन्दकुन्द के ही ग्रन्थों से मूलाचार में ग्रहण की गई हैं, मूलाचार से कुन्दकुन्द ने ग्रहण नहीं की हैं, यह निम्नलिखित हेतुओं से सिद्ध होता है—

१. कुन्दकुन्द ने अपने निम्नलिखित चार ग्रन्थों में एक ही शैली में मंगलाचरण किया है। उस शैली की विशेषता यह है कि चारों मंगलाचरणों में आदि में 'णमिऊण'

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

क्रिया का प्रयोग किया है तथा उसके बाद नमस्करणीय इष्टदेवता के नाम का उल्लेख किया गया है। यथा—

णमिऊण सव्वसिद्धे झाणुत्तमखविददीहसंसारे।
दस दस दो दो य जिणे दस दो अणुपेहणं वोच्छे॥ १॥ बा.अ.।

णमिऊण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे।
वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा॥ १॥ भा.पा.।

णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं।
वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं॥ २॥ मो.पा.।

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं॥ १॥ नि.सा.।

किन्तु मूलाचार में यह शैली कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। वहाँ किसी भी मंगलाचरण में 'णमिऊण' क्रिया का प्रयोग नहीं है। उसके स्थान पर केवल एक जगह 'णमंसिदूण' क्रिया प्रयुक्त की गई है और वह भी आदि में नहीं, अपितु 'सिद्धे' पद के पश्चात्। जैसे—

सिद्धे **णमंसिदूण** य झाणुत्तमखवियदीहसंसारे।
दह दह दो दो य जिणे दह दो अणुपेहणा वुच्छं॥ ६९३॥ मूला.।

कुन्दकुन्द की शैली की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने जहाँ सिद्धों को नमस्कार किया है, वहाँ केवल 'सिद्धे' पद का प्रयोग न कर 'सव्वसिद्धे' पद प्रयुक्त किया है। यथा—

णमिऊण सव्वसिद्धे झाणुत्तमखविददीहसंसारे॥ १॥ बा.अ.।

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गईं पत्ते॥ १॥ स.सा.।

किन्तु मूलाचार में केवल 'सिद्धे' पद का प्रयोग मिलता है, जैसे उपर्युक्त ६९३ वीं गाथा में—'**सिद्धे णमंसिदूण**।'

इस शैलीगत विशिष्टता से सिद्ध होता है कि 'बारस अणुवेक्खा' का उपर्युक्त मंगलाचरण कुन्दकुन्द की ही मौलिक कृति है, मूलाचार से गृहीत नहीं है। इस सत्य के उद्घाटन से यह दूसरा सत्य स्वतः उद्घाटित हो जाता है कि मूलाचार के कर्त्ता ने ही उसे 'बारस अणुवेक्खा' से ग्रहण किया है तथा उसमें उपर्युक्त प्रकार से कुछ शाब्दिक परिवर्तन कर अपनी किंचित् नवीनता का परिचय दिया है, यद्यपि **सिद्धे णमंसिदूण** इस नवीन प्रयोग में वह उच्चारण-सौकर्य और श्रुतिमाधुर्य नहीं है, जो

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

णमिऊण सव्वसिद्धे में है। इसी से तो सिद्ध होता है कि कुन्दकुन्द की काव्यप्रतिभा भी अद्वितीय है।

२. नियमसार और मूलाचार की अधोलिखित गाथाएँ तुलनीय हैं—

मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो मोक्खउवायो तस्स फलं होइ णिव्वाणं॥ २ ॥ नि. सा.।

मग्गो मग्गफलं ति य दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो खलु सम्मत्तं मग्गफलं होइ णिव्वाणं॥ २०२॥ मूला.।

नियमसार की उपर्युक्त गाथा में कुन्दकुन्द ने मोक्ष के उपाय को मार्ग कहा है और '**णियमं णाणदंसणचरित्तं**' (नि. सा. ३), '**णियमं मोक्खउवायो**' (नि. सा.४)। '**दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो**' (पं. का. १६४), इन गाथाओं में दर्शनज्ञानचारित्र को मोक्ष का उपाय या मार्ग बतलाया है। तथा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों मिलकर ही मोक्ष के मार्ग हैं, कोई एक अकेला नहीं, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसके विपरीत मूलाचार की उपर्युक्त गाथा (२०२) में केवल सम्यक्त्व को मोक्ष का मार्ग कहा गया है–'**मग्गो खलु सम्मत्तं**', जो मोक्षमार्ग के प्रसिद्ध लक्षण के विरुद्ध है और भ्रम उत्पन्न करता है। इसीलिए टीकाकार आचार्य वसुनन्दी को यह स्पष्टीकरण देना पड़ा है— "**ननु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि समुदितानि मार्गस्ततः कथं सम्यक्त्वमेव मार्गः। नैष दोषः अवयवे समुदायोपचारात् मार्गं प्रति सम्यक्त्वस्य प्राधान्याद्वा।**" (आचारवृत्ति / मूला./ गाथा २०२)। अर्थात् सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र तो समुदायरूप से मोक्ष के मार्ग हैं, तब केवल सम्यक्त्व को मोक्ष का मार्ग क्यों कहा गया? (उत्तर–) इसमें कोई दोष नहीं है। अवयव में समुदाय का उपचार होता है अथवा मोक्षमार्ग में सम्यक्त्व की प्रधानता है, इसलिए केवल सम्यक्त्व को मोक्ष का मार्ग कहा गया है।

किन्तु कुन्दकुन्द ने जो नियमसार की दूसरी गाथा में 'मोक्ष के उपाय' को मार्ग कहा है—**मग्गो मोक्खउवायो,** उसमें यह भ्रम नहीं होता और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का समुदाय मोक्षमार्ग है, यह सीधे-सीधे बुद्धिगम्य हो जाता है, अवयव में समुदाय के उपचार की आवश्यकता नहीं पड़ती। तथा नियमसार की उत्तरवर्ती तीसरी और चौथी गाथाओं में 'मोक्षोपाय' का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अर्थ स्पष्ट भी कर दिया गया है। अतः इन गाथाओं के प्रसंग में देखने पर इस बात में कोई सन्देह नहीं रहता कि नियमसार की उपर्युक्त गाथा में जो 'मग्गो मोक्खउवायो' पद हैं, वे ही मौलिक हैं, 'मग्गो खलु सम्मत्तं' पद मौलिक नहीं हैं। वे मूलाचार के कर्त्ता द्वारा कल्पित हैं और इसका उद्देश्य है सम्यक्त्व का लक्षण बतलाने के लिए समयसार की निम्नलिखित गाथा को भी 'मूलाचार' में समायोजित करना—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥ १३॥ स.सा.।

समयसार में यह गाथा जीवाजीवाधिकारमें १३ वें क्रम पर है और आचार्य वट्टकेर ने मूलाचार में इसे पंचाचाराधिकार के भीतर ठीक 'मग्गो मग्गफलं' गाथा के पश्चात् क्रमांक २०३ पर समायोजित किया है। समयसार में भूतार्थ और अभूतार्थ नयों से वस्तुस्वरूप का जो कथन चल रहा है, उस प्रसंग में इस गाथा का कथन सर्वथा उपयुक्त है, किन्तु मूलाचार में उपयुक्त नहीं है, क्योंकि वहाँ इन नयों से कथन का प्रसंग नहीं है। सम्यक्त्व का लक्षण वहाँ अन्य शब्दों में बतलाया जा सकता था।

निष्कर्ष यह है कि नियमसार की तीसरी और चौथी गाथाओं के अन्तःसम्बन्ध से यह सिद्ध होता है कि '**मग्गो मग्गफलं**' गाथा मूलतः कुन्दकुन्द की ही गाथा है, उसे कुछ शाब्दिक परिवर्तन के साथ मूलाचार में ग्रहण कर लिया गया है। इसी प्रकार 'भूयत्थेणाभिगदा' गाथा भी कुन्दकुन्दकृत ही है। वह भी समयसार से मूलाचार में आत्मसात् कर ली गई है।

३. अब समयसार और मूलाचार की निम्नलिखित गाथाओं पर दृष्टिपात किया जाय—

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि॥ ८०॥ स.सा.।

अनुवाद—"जीव के परिणामों के निमित्त से पुद्गल कर्मरूप में परिणमित हो जाते हैं। इसी प्रकार पुद्गलकर्मों के निमित्त से जीव भी (शुभाशुभ-भावरूप में)परिणमित हो जाता है।"

जीवपरिणामहेदू कम्मत्तण पोग्गला परिणमंति।
ण दु णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियदि॥ ९६९॥ मूला.।

अनुवाद—"जीव के परिणामों के निमित्त से पुद्गल कर्मरूप में परिणमित हो जाते हैं, किन्तु ज्ञानपरिणत जीव कर्मों का आदान नहीं करता।"

समयसार की '**जीवपरिणामहेदुं**' गाथा कर्त्ताकर्माधिकार में कही गई है। इस अधिकार का प्रयोजन यह प्रतिपादित करना है कि जीव न तो पुद्गल के परिणामों का कर्त्ता है, न पुद्गल जीव के परिणामों का, अपितु वे एक-दूसरे के निमित्त से स्वयं ही अपने-अपने परिणामों के कर्त्ता हैं। यही बात उक्त गाथा द्वारा प्रतिपादित की गई है। इसलिए प्रकरण के अनुसार गाथा का पूर्वार्ध उत्तरार्ध के साथ और उत्तरार्ध पूर्वार्ध के साथ परस्परसापेक्षभाव से सम्बद्ध है, जिससे सिद्ध होता है कि समयसार

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में गाथा के दोनों वाक्य मौलिक हैं अर्थात् कुन्दकुन्द द्वारा रचित हैं अतः इनमें से किसी भी वाक्य का 'मूलाचार' से लिया जाना युक्तिसंगत सिद्ध नहीं होता।

इसके विपरीत 'मूलाचार' में '**जीवपरिणामहेदू**---' वाक्य के साथ '**ण दु णाणपरिणदो**---' वाक्य जोड़ देने से दोनों वाक्यों के अर्थ परस्पर असंगत हो गये हैं। पूर्वार्ध में कहा गया है कि जीव के परिणाम के निमित्त से पुद्गल कर्मरूप में परिणमित हो जाते हैं और उत्तरार्ध में कहा गया है कि ज्ञानपरिणाम से जीव कर्मग्रहण नहीं करता। इससे ऐसा लगता है कि ज्ञानपरिणाम जीव का परिणाम नहीं है, किसी अन्य द्रव्य का परिणाम है, क्योंकि जीवपरिणाम को तो कर्मग्रहण का हेतु बतलाया गया है। किन्तु ज्ञानपरिणाम जीव का ही परिणाम है, इस कारण उपर्युक्त वाक्यों को परस्पर जोड़ देना अर्थ विसंगति का निमित्त बन गया है। यतः ज्ञानपरिणाम जीव का ही परिणाम है, अतः ऐसा कहा जाना चाहिए था—

"अज्ञानपरिणत जीव कर्मग्रहण करता है और ज्ञानपरिणत जीव कर्मग्रहण नहीं करता," जैसा कि आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार की निम्नलिखित गाथा में कहा है—

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि॥ १२७॥

अनुवाद—"अज्ञानी का अज्ञानमय भाव होता है, अतः वह उससे कर्मबन्ध करता है और ज्ञानी का ज्ञानमय भाव होता है, इसलिए वह उससे कर्मबन्ध नहीं करता।"

इसी प्रकार मूलाचार में अज्ञानपरिणाम और ज्ञानपरिणाम, इन परस्परविरुद्ध भावों के द्वारा परस्परविरुद्ध फलों की प्राप्ति का कथन किया जाता, तो वाक्यों का अर्थ परस्पर असंगत न होता, किन्तु जीवपरिणाम और ज्ञानपरिणाम इन अविरुद्ध भावों के द्वारा विरुद्ध फलों की प्राप्ति का कथन किये जाने से दोनों वाक्यों का अर्थ परस्पर असंगत हो गया है।

इसके अतिरिक्त मूलाचार के '**जीवपरिणामहेदू कम्मत्तण पोग्गला परिणमंति**' इस पूर्ववाक्य में जीवपरिणाम और पुद्गल के कर्मपरिणाम में कर्तृकर्मभाव का निषेध एवं निमित्त-नैमित्तिक भाव का प्रतिपादन किया गया है, इसलिए उत्तरवाक्य में पुद्गलकर्म और जीव के शुभाशुभपरिणाम में भी कर्तृकर्मभाव का निषेध एवं निमित्तनैमित्तिक भाव का प्रतिपादन अपेक्षित था। अथवा उत्तरवाक्य में ज्ञानपरिणत जीव को कर्मग्रहण न करनेवाला बतलाया गया है, इसलिए पूर्ववाक्य में अज्ञानपरिणत जीव को कर्मग्रहण करनेवाला बतलाया जाना चाहिए था। किन्तु ऐसा नहीं किया गया, अतः दोनों वाक्यों के अर्थ परस्पर सापेक्ष नहीं हैं। किन्तु आचार्य कुन्दकुन्द की '**जीवपरिणामहेदुं**' तथा

'**अण्णाणमओ भावो**' इन दोनों गाथाओं के दोनों वाक्यों में ऊपर बतलाये गये परस्परसापेक्ष अर्थों का प्रतिपादन है।

यद्यपि 'जीवपरिणाम' से जीव के 'शुभाशुभभाव' तथा 'ज्ञानपरिणत' से 'शुभाशुभभाव रहित' एवं 'पुद्गलों के कर्मरूप परिणाम' से 'जीव के द्वारा कर्मों का ग्रहण' अर्थ लेकर गाथा से उपयुक्त अर्थ निकाला जा सकता है, तथापि "**जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पोग्गला परिणमंति**" इस वाक्य के शब्द और अर्थ की जितनी तर्कपूर्ण संगति या सापेक्षभाव "**पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमइ**" इस वाक्य के साथ है, उतनी "**ण दु णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियदि**" इस वाक्य के साथ नहीं है। इससे सिद्ध है कि 'जीवपरिणामहेदुं' इत्यादि गाथावाक्य मूलतः समयसार का है, मूलाचार में वह समयसार से ग्रहण किया गया है, क्योंकि उसने आचार्य वट्टकेर को बहुत प्रभावित किया है।

४. निम्नलिखित गाथाओं की भी तुलना की जाय—

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो।
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥ १५०॥ स.सा.।

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा।
एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो॥ १७९॥ प्र.सा.

रागी बंधइ कम्मं मुच्चइ जीवो विरागसंपण्णो।
एसो जिणोवएसो समासदो बंधमोक्खाणं ॥ २४७॥ मूला.।

कुन्दकुन्द की उपर्युक्त दोनों गाथाओं में **रत्तो** शब्द का प्रयोग होने से ज्ञात होता है कि उन्हें **रागी** शब्द की अपेक्षा **रत्तो** शब्द अधिक प्रिय है और उसके प्रयोग की प्रवृत्ति उनके अभ्यास या शैली में है। अतः वे दोनों गाथाएँ कुन्दकुन्द की हैं। इसके अतिरिक्त ध्यान देने पर स्पष्ट होता है कि कुन्दकुन्द की इन दोनों गाथाओं के आधार पर मूलाचार की **रागी बंधइ कम्मं** गाथा रची गई है, क्योंकि उसमें प्रवचनसार की गाथा के **एसो बंधसमासो** पदों से प्रेरित होकर **समासदो बंधमोक्खाणं** यह पदावली निबद्ध की गयी है। इससे सिद्ध है कि कुन्दकुन्द की ही गाथाएँ मूलाचार में प्रविष्ट हुई हैं।

५. समयसार की लगातार चार गाथाओं (२१०-२१३) में **अपरिग्गहो अणिच्छो** (इच्छारहित जीव ही अपरिग्रही है) पदावली प्रयुक्त हुई है, जबकि मूलाचार की केवल एक गाथा (७८५) में **अपरिग्गहा अणिच्छा** शब्द आये हैं। इससे भी साबित होता है कि यह प्रयोग मूलतः कुन्दकुन्द का है, जिसका मूलाचार में अनुकरण किया गया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

६. आचार्य कुन्दकुन्द ने **काऊण णमुक्कारं** इन पदों के साथ दो ग्रन्थों में मंगलाचरण निबद्ध किया है। मूलाचार में भी इन पदों के साथ दो अधिकारों[३७] में मंगलाचरण उपलब्ध होता है, किन्तु जहाँ कुन्दकुन्द ने दोनों जगह एक गाथा में ही मंगलाचरण और ग्रन्थ-कथन की प्रतिज्ञा का निर्वाह किया है, वहाँ आचार्य वट्टकेर ने 'षडावश्यकाधिकार' में मंगलाचरण का विस्तार कर दो गाथाओं में यह कार्य सम्पन्न किया है।[३८] उदाहरणार्थ—

काऊण णमुक्कारं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स।
दंसणमग्गं वोच्छामि जहाकमं समासेण॥ १॥ दं.पा.।

काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं समासेण॥ १॥ लिं.पा.।

काऊण णमोक्कारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
आइरियउवज्झाए लोगम्मि य सव्वसाहूणं ॥ ५०२॥ मूला.।

आवासयणिज्जुत्ती वोच्छामि जहाकमं समासेण।
आयरियपरंपराए जहागदा आणुपुव्वीए॥ ५०३॥ मूला.।

यहाँ द्रष्टव्य है कि कुन्दकुन्द ने लिंगपाहुड में केवल अरहन्तों और सिद्धों को ही नमस्कार किया है, किन्तु मूलाचार में अन्तिम तीन परमेष्ठियों को भी जोड़कर मंगलाचरण का विस्तार कर दिया गया है और 'आवश्यकनिर्युक्ति' के कथन की प्रतिज्ञा उत्तर गाथा में की गई है। इतना ही नहीं दंसणपाहुड के मंगलाचरण में आये '**जहाकमं समासेण**' पदों को भी मूलाचार के कर्त्ता ने इस गाथाद्वयात्मक मंगलाचरण में समाविष्ट कर लिया है। इस प्रकार आचार्य वट्टकेर ने कुन्दकुन्द की उक्त दो गाथाओं की शब्दसामग्री को लेकर अपने गाथाद्वयात्मक मंगलाचरण की रचना की है और कुन्दकुन्द के मंगलाचरणों की अपेक्षा अपने मंगलाचरण में विस्तार (विकास) कर इस बात का प्रमाण दिया है कि मूलाचार कुन्दकुन्दसाहित्य से अर्वाचीन है।

७. नियमसार के 'परमसमाधि अधिकार' की १२५वीं गाथा से लेकर १३३वीं गाथा तक समस्त ९ गाथाओं के उत्तरार्ध में '**तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे**' वाक्य है। इनमें से '**जो समो सव्वभूदेसु**' (नि. सा.१२६ / मूला. ५२६) तथा '**जस्स सण्णिहिदो**' (नि. सा. १२७ / मूला. ५२५) गाथाएँ तो उसी उत्तरार्ध-सहित ज्यों की त्यों

---

३७. षडावश्यकाधिकार (गा. ५०२) एवं पर्याप्त्यधिकार (गा. १०४४)।

३८. मूलाचार के 'अनगारभावनाधिकार' की ७६९-७७०वीं गाथाओं में भी ऐसा ही किया गया है।

मूलाचार में ले ली गई हैं, किन्तु **'विरदो सव्वसावज्जं'** (नि. सा. १२५ / मूला. ५२४) गाथा का उत्तरार्ध मूलाचार में इस प्रकार बदल दिया गया है—

विरदो सव्वसावज्जे तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे॥ १२५॥ नि. सा.।

विरदो सव्वसावज्जं तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
जीवो सामाइयं णाम संजमट्ठाणमुत्तमं॥ ५२४॥ मूला.।

तथा नियमसार की **'जस्स रागो दु दोसो दु'** (नि. सा. १२८ / मूला. ५२७), **'जो दु अट्टं च रुद्दं च'** (नि. सा. १२९ / मूला. ५३१) तथा **'जो दु धम्मं च सुक्कं च'** (नि. सा. १३३ / मूला. ५३१) इन गाथाओं का **'तस्स सामाइगं ठाइ'** इत्यादि उत्तरार्धवाक्य मूलाचार में रखा ही नहीं गया, ये मूलाचार में एक-एक ही वाक्यवाली गाथाएँ हैं। इसके अतिरिक्त इसी प्रकार के भाववाली **'जेण कोधो य माणो य'** (५२७), **'जस्स सण्णा य लेस्सा य'** (५२८), **'जे दुरसे य फासे'** (५२९) तथा **'जो रूवगंधसद्दे'** (५३०) ये चार गाथाएँ मूलाचार में नयी निबद्ध की गई हैं, जिनका उत्तरार्ध **'तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे'** वाक्य ही होना चाहिए था, किन्तु वह यहाँ भी नहीं रखा गया। ये गाथाएँ नियमसार में उपलब्ध नहीं है। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि मूलाचार में नियमसार की अपेक्षा काफी परिवर्तित एवं नवीन सामग्री उपलब्ध होती है, जो मूलाचार के नियमसार से अर्वाचीन होने का लक्षण है। इससे यह स्वतः सिद्ध है कि पूर्वोक्त गाथाएँ और पदावलियाँ कुन्दकुन्द के ही ग्रन्थों से मूलाचार में ग्रहण की गई हैं।

इसके अतिरिक्त कुन्दकुन्द की अद्वितीय काव्यप्रतिभा, सूक्ष्म अध्यात्मदृष्टि, गहन चिन्तनमनीषा, अध्यात्मग्रन्थों का आद्यकर्तृत्व, बहुमुखी विशाल साहित्यसृष्टि एवं गणधरवत् प्रामाणिकता, वन्दनीयता एवं यशःकीर्ति देखते हुए यह बुद्धिगम्य नहीं होता कि उन्होंने पर-रचित ग्रन्थों से गाथाएँ एवं शब्दावली ग्रहण की होगी। बुद्धिगम्य तो यही होता है कि उनकी अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं आकर्षक सूक्तियों से प्रभावित होकर अन्य ग्रन्थकारों ने ही उनसे अपनी कृतियों को प्रभावी बनाने का प्रयत्न किया है।

इस प्रकार प्रथम शताब्दी ई० के **मूलाचार** में कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की अनेक गाथाएँ आत्मसात् की गयी हैं और उनकी शैली का भी अनुकरण किया गया है, इससे सिद्ध है कि कुन्दकुन्द-साहित्य मूलाचार की रचना से पहले रचा गया है। फलस्वरूप कुन्दकुन्द का समय ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी ही सुनिश्चित होता है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कुन्दकुन्द की गाथाओं से मूलाचार की गाथाओं में जो उपर्युक्त विसंगतियाँ हैं, उनसे सिद्ध होता है कि मूलाचार के कर्त्ता कुन्दकुन्द नहीं, अपितु वट्टकेर ही हैं। यदि उसकी रचना कुन्दकुन्द ने की होती, तो जैसे उन्होंने चार मंगलाचरणों में **णमिऊण** जैसे उच्चारण-सुकर एवं श्रुति-मधुर पद का प्रयोग किया है, वैसे ही मूलाचार के उक्त मंगलाचरण में भी करते, **णमंसिदूण** जैसे उच्चारण-असुकर पद प्रयुक्त न करते, इसी प्रकार नियमसार की तरह मूलाचार में भी मार्ग का लक्षण **मग्गो मोक्खउवायो** ही बतलाते **मग्गो खलु सम्मत्तं** नहीं। मूलाचार की '**जीवपरिणामहेदू**' गाथा भी समयसार की '**जीवपरिणामहेदुं**' गाथा के समान विसंगतिरहित होतीं। किन्तु मूलाचार की उक्त गाथाओं में ये विशेषताएँ उपलब्ध नहीं होतीं। इससे स्पष्ट है कि उसकी रचना कुन्दकुन्द ने नहीं की।

४

द्वि. श. ई. के तत्त्वार्थसूत्र में कुन्दकुन्द के वाक्यांश

४.१. तत्त्वार्थसूत्र का रचनाकाल

पं० सुखलाल जी संघवी ने **सर्वार्थसिद्धि** का रचनाकाल विक्रम की पाँचवीं-छठी शताब्दी स्वीकार कर तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति के समय की उत्तरसीमा उससे दो सौ वर्ष पहले अर्थात् विक्रम की तीसरी-चौथी शताब्दी निश्चित की है। वे लिखते हैं—

"(तत्त्वार्थधिगमभाष्य की षट्पद्यात्मक) प्रशस्ति में अपने दीक्षागुरु (घोषनन्दी श्रमण) और विद्यागुरु (वाचकाचार्य मूल) के जो नाम उन्होंने (उमास्वाति ने) दिये हैं, उनमें से एक भी नाम कल्पसूत्र की स्थविरावली में या वैसी किसी दूसरी पट्टावली में नहीं मिलता। अतः उमास्वाति के समय के सम्बन्ध में स्थविरावली के आधार पर अधिक से अधिक इतना ही कहा जा सकता है कि वे वीरात् ४७१ अर्थात् विक्रमसंवत् के प्रारंभ में लगभग किसी समय हुए हैं, उससे पहले नहीं, इससे अधिक परिचय अभी अन्धकार में है।

"इस अन्धकार में एक अस्पष्ट प्रकाशकिरण तत्त्वार्थसूत्र के प्राचीन टीकाकार के समय-सम्बन्धी उपलब्ध है, जो उमास्वाति के समय की अनिश्चित उत्तरसीमा को मर्यादित करती है।---स्वोपज्ञ भाष्य को यदि अलग रखा जाय, तो तत्त्वार्थसूत्र पर उपलब्ध सीधी टीकाओं में आचार्य पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि सबसे प्राचीन है। पूज्यपाद का समय विद्वानों ने विक्रम की पाँचवीं-छठी शताब्दी निर्धारित किया है। अतः कहा जा सकता है कि सूत्रकार वा० उमास्वाति विक्रम की पाँचवी शताब्दी से पूर्व किसी समय हुए हैं।

"उक्त विचारसरणी के अनुसार वा० उमास्वाति का प्राचीन से प्राचीन समय विक्रम की पहली शताब्दी और अर्वाचीन से अर्वाचीन समय तीसरी-चौथी शताब्दी निश्चित होता है। इन तीन चार सौ वर्षों के बीच उमास्वाति का निश्चित समय शोधने का काम शेष रह जाता है।" (त.सू. / वि.स. / प्रस्ता. पृ.७-८)।

इस वक्तव्य में मान्य संघवी जी ने उमास्वामी का अस्तित्वकाल विक्रम की पहली शताब्दी से लेकर तीसरी-चौथी शताब्दी के बीच सम्भाव्य माना है। **दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी** में प्रकाशित नन्दिसंघ की पट्टावली में उमास्वामी का जो काल निर्दिष्ट किया गया है, उसकी इससे संगति बैठ जाती है। उसमें उमास्वामी का आचार्यपदारोहणकाल विक्रम सं. १०१ (४४ ई०) बतलाया गया है। तथापि उनका समय उससे कुछ बाद ही बैठता है। उक्त पट्टावली में उमास्वामी का नाम कुन्दकुन्द के बाद आया है। कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों की रचना ईसापूर्व प्रथम शती के अन्तिम चरण तथा ईसोत्तर प्रथम शती के प्रथम चरण में की थी और उनके बाद ईसा की पहली शताब्दी में भगवती-आराधना के कर्त्ता शिवार्य और मूलाचार के रचयिता वट्टकेर हुए, जिन्होंने अपने ग्रन्थों में न केवल कुन्दकुन्द की गाथाएँ ग्रहण की हैं, अपितु उनकी शैली का भी अनुकरण किया है। तत्पश्चात् तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति अवतरित हुए। उन्होंने तत्त्वार्थसूत्र की रचना में उक्त तीनों आचार्यों के ग्रन्थों से सहायता ली है। अतः उमास्वाति का अस्तित्वकाल ईसा की द्वितीय शताब्दी का पूर्वार्ध फलित होता है। डॉ० नेमिचन्द्र जी शास्त्री ने भी यही काल आकलित किया है।[३९]

४.२. कुन्दकुन्द के वाक्यांशों की संस्कृत-छाया

'तत्त्वार्थ' के अनेक सूत्रों की रचना कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के आधार पर की गई है। उनमें कई सूत्र तो कुन्दकुन्द के वाक्यांशों की संस्कृत-छाया मात्र हैं। इसका विस्तृत विवेचन 'तत्त्वार्थसूत्र' नामक अध्याय में द्रष्टव्य है। यहाँ उसके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१. दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो। — सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।
पं. का. १६४ त. सू. १/१ ।

२. जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं। स.सा.१५५ —तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। त.सू.१/२।

३. देवा चउण्णिकाया। पं.का.११८ — देवाश्चतुर्णिकायाः। त.सू.४/१।

४. आगासस्सवगाहो । प्र.सा.२/४१ — आकाशस्यावगाहः। त.सू.५/१८।

---

३९. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा / खण्ड २ / पृ.१५३।

५. उवओगलक्खणा। पं.का.१०९	—	उपयोगो लक्षणम्। त.सू.२ / ८।
६. दव्वं सल्लक्खणियं। पं.का.१०	—	सद् द्रव्यलक्षणम्। त.सू.५ / २९।
७. उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं। पं.का.१०	—	उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। त.सू.५ / ३०।
८. गुणपज्जयासयं (दव्वं)। पं.का.१०	—	गुणपर्ययवद् द्रव्यम्। त.सू.५ / ३८।
९. जोगो मणवयणकायसंभूदो। पं.का.१४८	—	कायवाङ्मनः कर्म योगः। त.सू.६ / १।
१०. आसवणिरोहो (संवरो)। स.सा.१६६	—	आस्रवनिरोधः संवरः। त.सू.९ / १।

इस अत्यन्त साम्य से स्पष्ट हो जाता है कि उमास्वामी ने 'तत्त्वार्थसूत्र' के अनेक सूत्रों की रचना कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के आधार पर की है, अतः कुन्दकुन्द प्रथम-द्वितीय शताब्दी ई० के उमास्वामी से पूर्ववर्ती हैं।

४.३. कुन्दकुन्द के द्वारा तत्त्वार्थसूत्र का अनुकरण नहीं

इस साम्य के विषय में पं० सुखलाल जी संघवी तत्त्वार्थसूत्र की प्रस्तावना में लिखते हैं-"ऊपर (संघवी जी द्वारा विवेचित 'तत्त्वार्थसूत्र' की प्रस्तावना, पृष्ठ ८-९ पर) दिये हुए द्रव्य, गुण तथा काल के लक्षणवाले 'तत्त्वार्थ' के तीन सूत्रों के लिए उत्तराध्ययन के अतिरिक्त किसी प्राचीन श्वेताम्बर जैन-आगम अर्थात् अंग का उतना ही शाब्दिक आधार अब तक देखने में नहीं आया, **परन्तु विक्रम की पहली-दूसरी शताब्दी के माने जानेवाले कुन्दकुन्द** के प्राकृत वचनों के साथ तत्त्वार्थ के संस्कृत सूत्रों का कहीं तो पूर्ण और कहीं बहुत ही कम सादृश्य है। श्वेताम्बर-सूत्रपाठ में द्रव्य के लक्षणवाले दो ही सूत्र हैं—'**उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्**' (५/२९) तथा '**गुणपर्यायवद् द्रव्यम्**' (५/३७)। इन दोनों के अतिरिक्त द्रव्य का लक्षणविषयक एक तीसरा सूत्र दिगम्बर सूत्रपाठ में है—'**सद् द्रव्यलक्षणम्**' (५/२९)। ये तीनों दिगम्बर-सूत्रपाठगत सूत्र कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय की निम्न प्राकृत गाथा में पूर्णरूप से विद्यमान हैं—

दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।
गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू॥ १०॥

"इसके अतिरिक्त कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध ग्रन्थों के साथ तत्त्वार्थसूत्र का जो शाब्दिक तथा वस्तुगत महत्त्वपूर्ण सादृश्य है, वह आकस्मिक तो नहीं ही है।" (त.सू. / वि.स. / प्रस्ता. / पृ.९-१०)

इस प्रकार पं० सुखलाल जी ने भी तत्त्वार्थसूत्र के सूत्रों और कुन्दकुन्द के वाक्यांशों में घनिष्ठ साम्य स्वीकार किया है। किन्तु, उन्होंने सन् १९२९ में लिखे "**तत्त्वार्थसूत्र के प्रणेता उमास्वाति**" नामक लेख में कहा था कि "ये तीनों दिगम्बरीय सूत्रपाठ में के सूत्र कुन्दकुन्द के पंचास्तिकाय की निम्न प्राकृत गाथा '**दव्वं सल्लक्खणियं**' में पूर्णरूप से भाषान्तरित होकर गूँथे गये हैं, ऐसा नजर पड़ता है।"[४०] अर्थात् वे मानते थे कि कुन्दकुन्द ने तत्त्वार्थसूत्र के उक्त सूत्रों को प्राकृत में रूपान्तरित कर पंचास्तिकाय की वह गाथा निबद्ध की है। किन्तु आगे चलकर जब तत्त्वार्थसूत्र की प्रस्तावना में उन्होंने वही लेख उद्धृत किया, तो उपर्युक्त शब्द हटा दिये। (देखिए, त.सू./वि.स./सन् १९९३/पृ.१०)। क्योंकि जब उन्होंने सर्वार्थसिद्धि के रचनाकाल के आधार पर उमास्वाति का समय विक्रम की प्रथम शताब्दी से लेकर तीसरी-चौथी शताब्दी के बीच अनुमानित किया है, तब (उनके अनुसार) विक्रम की पहली-दूसरी शताब्दी के माने जानेवाले कुन्दकुन्द (त.सू./वि.स./प्रस्ता./पृ.९) को उमास्वामी का परवर्ती मान लेना संगत कैसे हो सकता था? इस विसंगति के बोध ने उन्हें उक्त शब्द विलोपित करने के लिए बाध्य कर दिया।

किन्तु, पं० दलसुख मालवणिया, प्रो० एम० ए० ढाकी, डॉ० सागरमल जी तथा और भी अनेक श्वेताम्बर मुनि एवं विद्वान् यह मानने को तैयार नहीं है कि उमास्वामी ने कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के आधार पर तत्त्वार्थसूत्र की रचना की है। वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कुन्दकुन्द ने ही तत्त्वार्थसूत्र का अनुकरण किया है। फलस्वरूप उन्होंने कुन्दकुन्द को उमास्वामी से उत्तरवर्ती सिद्ध करने के लिए अनेक प्रकार के हेतुओं की कल्पना की है। डॉ० सागरमल जी लिखते हैं—

"यह सत्य है कि उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र और कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में अनेक समानताएँ परिलक्षित होती हैं, किन्तु मात्र इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उमास्वाति ने ही इन्हें कुन्दकुन्द से ग्रहण किया है। संभावना यह भी हो सकती है कि कुन्दकुन्द ने ही उमास्वाति से इन्हें लिया हो। हमें तो यह देखना होगा कि उनमें से कौन पूर्व में हुए और कौन पश्चात्?"(जै.ध.या.स./पृ.२४७)।

इसके बाद डॉक्टर सा० मुनि कल्याणविजय जी एवं प्रो० ढाकी द्वारा प्रकल्पित हेतुओं का निर्देश करते हुए कहते हैं—

"कुन्दकुन्द छठी शताब्दी के पूर्व तो किसी भी स्थिति में नहीं हुए हैं, इस तथ्य को प्रो० मधुसूदन ढाकी और मुनि कल्याणविजय जी ने अनेक प्रमाणों से प्रतिपादित

---

४०. 'अनेकान्त'/ वर्ष १/ किरण ६-७ / वीर नि.सं.२४५६ / पृ० ३९१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किया है। जब कि उमास्वाति किसी भी स्थिति में तीसरी या चौथी शताब्दी से परवर्ती सिद्ध नहीं होते।''(जै.ध.या.सं./पृ.२४८)।

तत्पश्चात् डॉक्टर सा० स्वयं के द्वारा प्रकल्पित गुणस्थान-विकासवाद एवं सप्तभंगी-विकासवाद की चर्चा करते हैं, जिन्हें उन्होंने कुन्दकुन्द को उमास्वाति से उत्तरकालीन सिद्ध करने के लिए हेतुरूप में प्रस्तुत किया है।

इन सभी विद्वानों ने कुन्दकुन्द को उमास्वाति से उत्तरकालीन अर्थात् विक्रम की छठी शताब्दी या ईसा की ८ वीं शताब्दी का सिद्ध करने के लिए जो हेतु प्रस्तुत किये हैं, वे सभी कपोलकल्पित हैं, यह आगे प्रतिपादित किया जायेगा। यहाँ कुछ ऐसे अन्तरंग प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने ही कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का अनुकरण किया है, कुन्दकुन्द ने तत्त्वार्थसूत्र का नहीं—

१. हम देखते हैं कि '**सद् द्रव्यलक्षणम्**', '**उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्**' तथा '**गुणपर्ययवद् द्रव्यम्**', द्रव्य के इन तीन लक्षणों में से श्वेताम्बरमान्य तत्त्वार्थसूत्र में अन्तिम दो लक्षण ही उपलब्ध होते हैं, '**सद् द्रव्यलक्षणम्**' नहीं। ये तीनों लक्षण केवल दिगम्बरमान्य तत्त्वार्थसूत्र में मिलते हैं। यदि कुन्दकुन्द ने ये लक्षण तत्त्वार्थसूत्र से लिए होते, तो '**सद् द्रव्यलक्षणम्**' यह सूत्र तत्त्वार्थसूत्र के श्वेताम्बरमान्य पाठ में भी होना चाहिए था, किन्तु नहीं है। अतः तत्त्वार्थसूत्र के श्वेताम्बरमान्य पाठ से तो यह सिद्ध नहीं होता कि कुन्दकुन्द ने **दव्वं सल्लक्खणियं** यह द्रव्य-लक्षण 'तत्त्वार्थसूत्र' के '**सद् द्रव्यलक्षणम्**' सूत्र से अनुकृत किया है। अतः सिद्ध है कि उसकी रचना कुन्दकुन्द ने ही की है। और **दव्वं सल्लक्खणियं** इस वचन द्वारा द्रव्यलक्षण के रूप में 'सत्' का निर्देश होने पर ही **उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं** इस वचन द्वारा 'सत्' के लक्षण का प्रतिपादन संभव है, क्योंकि लक्ष्य के निर्देश के बिना लक्षण का निर्देश निराधार होने से युक्तियुक्त नहीं होता। अतः 'सत्' के लक्षण का निर्देश सत्-रूप लक्ष्य के निर्देश की अपेक्षा रखता है, अर्थात् वह सत्-निर्देश-सापेक्ष है। कुन्दकुन्द को सत् के लक्षण का प्रतिपादन अभीष्ट था, अतः उन्होंने सर्वप्रथम **दव्वं सल्लक्खणियं** वचन द्वारा 'सत्' का निर्देश किया है, तत्पश्चात् **उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं** वचन द्वारा उसके लक्षण का। इस प्रकार **दव्वं सल्लक्खणियं** इस वचन के कुन्दकुन्दकृत सिद्ध होने से यह स्वतः सिद्ध होता है कि **उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं** यह वचन भी कुन्दकुन्दकृत ही है और उसके ही आधार पर तत्त्वार्थसूत्र में '**उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्**' सूत्र की रचना की गयी है। इसकी पुष्टि इस तथ्य से होती है कि श्वेताम्बर-आगमों में सत्

का यह लक्षण उपलब्ध नहीं है,[४१] अतः श्वेताम्बर-आगम उक्त सूत्र के स्रोत नहीं हो सकते।

'सद् द्रव्यलक्षणम्' सूत्र तत्त्वार्थसूत्र के दिगम्बरीय पाठ में उपलब्ध है, जिस पर पाँचवीं शती ई० के पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि टीका लिखी है। इससे सिद्ध होता है कि यह सूत्र 'तत्त्वार्थसूत्र' में पाँचवीं शताब्दी के पूर्व विद्यमान था। और पूज्यपाद ने **'संसारिणो मुक्ताश्च'** (त.सू. २/१०) सूत्र की इसी सर्वार्थसिद्धि टीका में आचार्य कुन्दकुन्दकृत 'बारस अणुवेक्खा' की **'सव्वे वि पुग्गला'** इत्यादि पाँच गाथाएँ **'उक्तं च'** कहकर उद्धृत की हैं, इससे सिद्ध है कि कुन्दकुन्द ईसा की पाँचवीं शताब्दी से पूर्ववर्ती हैं। ये प्रमाण आचार्य कुन्दकुन्द को ईसा की तीसरी-चौथी शती में ले आते हैं, जो पं० सुखलाल जी संघवी के पूर्वोद्धृत वचनानुसार उमास्वाति का काल है। तथा भगवती-आराधना और मूलाचार के पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि कुन्दकुन्द ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए थे और ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के पूर्वार्ध तक विद्यमान रहे। अतः इस बात में कोई सन्देह नहीं रहता कि **'दव्वं सल्लक्खणियं'** आदि गाथा में वर्णित द्रव्य के तीनों लक्षण आचार्य कुन्दकुन्द ने स्वयं ही प्रतिपादित किये हैं, तत्त्वार्थसूत्र से अनुकृत नहीं हैं।

इस तथ्य से एक महत्त्वपूर्ण बात प्रकट होती है, वह यह कि तत्त्वार्थसूत्र का दिगम्बरीय पाठ श्वेताम्बरीय पाठ से प्राचीन है, क्योंकि उसमें **'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'** का आधारभूत सूत्र **'सद् द्रव्यलक्षणम्'** विद्यमान है, जब कि श्वेताम्बरीय पाठ में वह ग्रहण नहीं किया गया। **'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'** इस सूत्र में सत् का लक्षण बतलाया गया है। किन्तु 'सत्' का निर्देश हुए बिना उसके लक्षण का प्रतिपादन युक्तिसंगत नहीं है। अतः **'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'** इस सूत्र का उल्लेख ही यह सिद्ध करता है कि इसके पूर्व 'सत्' का निर्देश करनेवाला **'सद् द्रव्यलक्षणम्'** सूत्र का उल्लेख है। श्वेताम्बरीय तत्त्वार्थसूत्र में इस आधारभूत सूत्र का अभाव सिद्ध करता है कि वह दिगम्बरीय पाठ से अर्वाचीन है।

---

४१. 'स्थानांग' (१०) में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का उल्लेख तो है, परन्तु उनसे युक्त पदार्थ को 'सत्' नहीं कहा गया है। वहाँ केवल **'माउयाणुयोग'** (मातृकानुयोग) शब्द की चर्चा है, जिसका अर्थ है 'उत्पादव्ययध्रौव्य' इस पदत्रयी का अनुयोग-"**मातृकापदानि 'उप्पणेइ वा' इत्येवमादीनि तत्समूहो मातृकाकायः। --- मातृकानुयोगः = मातृका प्रवचनपुरुषस्योत्पा-दव्यय-ध्रौव्यलक्षणा पदत्रयी तस्या अनुयोगः।**" (अभिधानराजेन्द्रकोश/भाग ६/ पृ. २३५)। उपाध्याय आत्माराम जी ने तत्त्वार्थसूत्र-जैनागमसमन्वय (५/३०) में इस मातृकानुयोग को ही 'सत्' कहा है, जो शब्द और अर्थ दोनों दृष्टियों से असंगत है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२. कुन्दकुन्द ने समयसार (गा.१०९) में बन्ध के चार हेतु बतलाये हैं : मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग, जब कि तत्त्वार्थसूत्र (८/१) में प्रमाद को भी बन्धहेतु बतलाया गया है। यदि कुन्दकुन्द ने तत्त्वार्थसूत्र का अनुकरण किया होता, तो वे भी बन्ध के पाँच ही हेतु बतलाते, चार नहीं। यतः उन्होंने केवल चार हेतु बतलाये हैं, इससे सिद्ध है कि कुन्दकुन्द ने तत्त्वार्थसूत्र का अनुकरण नहीं किया। तत्त्वार्थसूत्र में पाँच हेतुओं की उपलब्धि विकास की सूचक है और विकास अर्वाचीनता का, अतः यह सिद्ध होता है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने चार बन्धप्रत्यय समयसार से ग्रहण किये हैं और एक उन्होंने स्वयं विस्तररुचि शिष्यों के अवबोधार्थ कषायप्रत्यय को विभाजित कर बढ़ाया है।

३. आचार्य कुन्दकुन्द ने नौ पदार्थ और सात तत्त्व दोनों का कथन किया है—

सव्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइ सत्त तच्चाइं।
जीवसमासाइं मुणी चउदस-गुणठाण-णामाइं॥ ९७॥ भा.पा.।

अनुवाद—"हे मुनि! सर्वविरत होने पर भी तू नौ पदार्थों, सात तत्त्वों, चौदह जीवसमासों और चौदह गुणस्थानों के स्वरूप का चिन्तन कर।"

श्वेताम्बर-आगमों में केवल नौ पदार्थों का कथन है।[४२] किन्तु तत्त्वार्थसूत्रकार ने नौ पदार्थों का कथन न कर सात तत्त्वों का कथन किया है। यतः सात तत्त्वों का कथन केवल कुन्दकुन्द के **भावपाहुड** में मिलता है, श्वेताम्बर-आगमों में नहीं, इससे सिद्ध है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने कुन्दकुन्द-वर्णित नौ पदार्थों और सात तत्त्वों में से संक्षिप्त होने के कारण सात तत्त्वों की कथनपद्धति का अनुसरण किया है। अतः कुन्दकुन्द तत्त्वार्थसूत्रकार से पूर्ववर्ती हैं।

डॉ० सागरमल जी का मत है कि "दोनों (दिगम्बर और श्वेताम्बर) परम्पराओं में प्राचीन काल में नव पदार्थ ही माने जाते थे, किन्तु तत्त्वार्थसूत्र के पश्चात् दोनों में सात तत्त्वों की मान्यता भी प्रविष्ट हो गयी। चूँकि श्वेताम्बर प्राचीन स्तर के आगमों का अनुसरण करते थे, अतः उनमें नौ तत्त्वों की मान्यता की प्रधानता बनी रही, जब कि दिगम्बर-परम्परा में तत्त्वार्थ के अनुसरण के कारण सात तत्त्वों की प्रधानता स्थापित हो गई।" (जै.ध.या.स./पृ.२१७)।

---

४२. श्वेताम्बरमुनि उपाध्याय श्री आत्माराम जी ने '**जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्**' (त.सू.१/४) इस सूत्र का समन्वय 'स्थानाङ्ग' के निम्नलिखित सूत्र से किया है, "**नव सब्भावपयत्था पण्णत्ते तं जहा—जीवा अजीवा पुण्णं पावो आसवो संवरो निज्जरा बंधो मोक्खो**"। (९/६६५/तत्त्वार्थसूत्र जैनागम-समन्वय/पृ.६)। किन्तु इस सूत्र में नौ पदार्थों का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि श्वेताम्बरागमों में सात तत्त्वों का उल्लेख कहीं भी नहीं है।

यह मत समीचीन नहीं है, क्योंकि पुण्य-पाप को आस्रव-बन्ध में शामिल कर सात तत्त्वों की संक्षिप्त कथनपद्धति तत्त्वार्थसूत्रकार की देन नहीं है, अपितु दिगम्बरपरम्परा में उनके पूर्व से चली आ रही थी, जिसका उल्लेख कुन्दकुन्द ने **भावपाहुड** में किया है। यह और बात है कि स्पष्टीकरण के लिए कुन्दकुन्द ने सर्वत्र नव पदार्थों का ही वर्णन किया है (स.सा.१३ / पं.का.१०८)। तत्त्वार्थसूत्रकार को नौ पदार्थों के स्थान में सात तत्त्वों के कथन की प्रेरणा **भावपाहुड** से ही मिली है। यह कुन्दकुन्द के तत्त्वार्थसूत्रकार से पूर्ववर्ती होने का प्रमाण है। कुन्दकुन्द ने कहीं भी सात तत्त्वों का अलग-अलग नाम लेकर वर्णन नहीं किया, इसलिए कुन्दकुन्द के द्वारा तत्त्वार्थसूत्रकार का अनुकरण किये जाने की कल्पना नहीं की जा सकती।

४. कुन्दकुन्द ने जीवों के एकेन्द्रियादि चौदह भेदों को अभिहित करने के लिए **जीवट्ठाण** (जीवस्थान) और **जीवनिकाय**[४३] शब्दों का प्रयोग किया है। पूर्ववर्ती **षट्-खण्डागम** में इन्हें किसी भी शब्द से अभिहित नहीं किया गया है, केवल इन्द्रिय-मार्गणा की अपेक्षा चौदह भेदों के नाम बतला दिये गये हैं।[४४] षट्खण्डागम में **जीवसमास** संज्ञा का प्रयोग गुणस्थान के अर्थ में किया गया है। (ष.खं. / पु.१ / १,१,२)। **गुण** और **ट्ठाण** (स्थान)[४५] शब्द भी इसी अर्थ में व्यवहृत हुए हैं। कुन्दकुन्द से उत्तरवर्ती

४३. क— एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्ठाणा उ करणभूदाहिं॥ ६६॥ समयसार।
ख— एदे जीवणिकाया पंचविहा पुढविकाइयादीया।
मणपरिणामविरहिदा जीवा एगेंदिया भणिया॥ ११२॥ पञ्चास्तिकाय।

४४. षट्खण्डागम / पु.१/१,१,३३-३५। षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड का 'जीवट्ठाण' नाम टीकाकार वीरसेनस्वामी-कृत है, षट्खण्डागमकार-कृत नहीं। वह भी गुणस्थानों और मार्गणाओं की अपेक्षा सत् संख्या आदि रूप से जीवतत्त्व की मीमांसा करनेवाले शास्त्र के अर्थ में प्रयुक्त है, जीव के एकेन्द्रियादि चौदह भेदों के अर्थ में नहीं। (देखिए ,ष.खं. / पु.१/ प्रस्तावना / पृ.६२)। स्वयं वीरसेन स्वामी ने कहा है-"**एत्थेदं जीवट्ठाणं भावदो सुदभावपमाणं**" अर्थात् इन (नामादि छह प्रमाणों) में से यह 'जीवस्थान' नाम का शास्त्र भावप्रमाण की अपेक्षा श्रुतभावप्रमाणरूप है। (ष.ख. / पु.१ / १,१,१ / पृ. ८३)। षट्खण्डागमकारों के अनुसार जीव के एकेन्द्रियादि चौदह भेदों को 'इन्द्रियमार्गणास्थान' कहा जा सकता है।

४५. क—"गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं।" षट्खण्डागम / पु.५ / १,६,५६।
अनुवाद—"गुणस्थान की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों प्रकारों से अन्तर नहीं है, निरन्तर है।" (वही / पृ.४६)।
ख—"मणुस्सा चोद्दससु **ट्ठाणेसु** अत्थि मिच्छाइट्ठी ---।" षट्खण्डागम / पु.१/१,१,२७। षट्खण्डागम के प्रथमसंस्करण में यहाँ **ट्ठाणेसु** के स्थान में **गुणट्ठाणेसु** पाठ है। (देखिये, उपर्युक्त सूत्र की पादटिप्पणी १ / षट्खण्डागम (तृतीयसंस्करण) / जैन संस्कृति संरक्षक संघ सोलापुर तथा 'आवश्यक निवेदन' पृ. १६)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मूलाचार में जीव के उक्त भेदसमूह को **जीवसमास** और **जीवस्थान**[४६] संज्ञा दी गई है। कुन्दकुन्दकृत **भावपाहुड**[४७] और पूज्यपादकृत **सर्वार्थसिद्धि**[४८] में **जीवसमास** शब्द षट्खण्डागम की तरह गुणस्थान के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

जीवनिकाय के समान कुन्दकुन्द ने देवों के चार भेदों को भी **निकाय** शब्द से अभिहित किया है, यथा–**देवा चउण्णिकाया** (पं.का.११८)। श्वेताम्बर-आगमों में न तो जीवों के उक्त चौदह भेदों के लिए 'निकाय' शब्द का प्रयोग हुआ है, न देवों के चार भेदों के लिए। उपाध्याय आत्माराम जी ने **तत्त्वार्थसूत्र** के **'देवाश्चतुर्णिकायाः'** (४/१) सूत्र को **व्याख्याप्रज्ञप्ति** के **''चउव्विहा देवा पण्णत्ता, तं जहा भवणवई वाणमंतर जोइस वेमाणिया''** (शतक २, उद्देश्य ७) इस वाक्य पर आश्रित बतलाया है।[४९] किन्तु इसमें 'निकाय' शब्द अनुपलब्ध है। इससे सिद्ध होता है कि 'श्रेणी' या 'प्रकार' के अर्थ में 'निकाय' शब्द का प्रयोग कुन्दकुन्द की अपनी विशेषता है। अतः तत्त्वार्थसूत्रकार ने कुन्दकुन्दकृत पञ्चास्तिकाय (गा.११८) के **देवा चउण्णिकाया** इस गाथांश को ही संस्कृत में रूपान्तरित करके तत्त्वार्थसूत्र में संगृहीत कर लिया है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि दोनों में शब्दशः साम्य है।

५. तत्त्वार्थसूत्र के नामकरण में तथा **'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** सूत्र में जिस **तत्त्वार्थ** शब्द का प्रयोग हुआ है, वह भी कुन्दकुन्द के ही साहित्य में सर्वप्रथम उपलब्ध होता है। यह तत्त्व और अर्थ, इन दो शब्दों के योग से बना हुआ विशिष्ट शब्द है, जो तत्त्वसहित पदार्थ (**तत्त्वेनार्थस्तत्त्वार्थः**–स.सि.१/२) अथवा तत्त्वरूप पदार्थ (**तत्त्वमेवार्थस्तत्त्वार्थः**–स.सि.१/२) का वाचक है। श्वेताम्बर-आगमों में यह उपलब्ध नहीं है। उपाध्याय आत्माराम जी ने **'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** सूत्र का आगमिक आधार उत्तराध्ययन की निम्नलिखित गाथा को बतलाया है—

तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं।
भावेणं सद्दहन्तस्स सम्मत्तं तं वियाहियं॥[५०]

---

४६. क—एइंदियादि पाणा चोद्दस दु हवंति **जीवठाणाणि**॥ ११८९॥ मूलाचार।
ख—तिरियगदीए चोद्दस हवंति सेसाणु जाण दो दो दु।
मग्गणठाणस्सेदं णेयाणि **समासठाणाणि**॥ १२०१॥ मूलाचार।

४७. सव्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं।
जीवसमासाइं मुणी चउदसगुणठाणणामाइं॥ ९७॥ भावपाहुड।

४८. ''जीवाश्चतुर्दशसु गुणस्थानेषु व्यवस्थिताः। --- एतेषामेव जीवसमासानां निरूपणार्थं चतुर्दश मार्गणास्थानानि ज्ञेयानि।'' सर्वार्थसिद्धि १/८/अनुच्छेद ३४/भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन।

४९. तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम समन्वय ४/१/पृ.९५।

५०. तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय १/२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"वास्तविक भावों के सद्भाव का उपदेश देने तथा जिस रूप से उन्हें जाना जाता है, उसी रूप से उनका श्रद्धान करने को सम्यग्दर्शन कहा गया है।"

इस गाथा में न तो **तत्त्वार्थ** शब्द उपलब्ध होता है, न **तत्त्व**, न **अर्थ**, जब कि कुन्दकुन्द के **नियमसार** की इन दो गाथाओं में **तत्त्वार्थ** शब्द पाया जाता है—

तस्स मुहग्गदवयणं पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति **तच्चत्था**॥ ८॥

अनुवाद—"भगवान् के मुख से निकले हुए पूर्वापरदोष-रहित शुद्ध बचन को आगम कहा गया है। उस आगम से तत्त्वार्थों का कथन हुआ है।"

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।
तच्चत्था इति भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता॥ ९॥

अनुवाद—"जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश, इन्हें तत्त्वार्थ कहा गया है। ये नाना गुण-पर्यायों से संयुक्त हैं।"

इस प्रमाण से सिद्ध हो जाता है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने सात तत्त्वों के साथ **तत्त्वार्थ** शब्द का संग्रह भी कुन्दकुन्द के साहित्य से किया है।

यहाँ ध्यान देने योग्य है कि तत्त्वार्थसूत्र एक संग्रहग्रन्थ है। तत्त्वार्थाधिगमभाष्यकार उमास्वाति ने भी यह स्वीकार किया है।[५१]

उपाध्याय आत्माराम जी ने प्रसिद्ध श्वेताम्बर वैयाकरण आचार्य हेमचन्द्रसूरि के **सिद्धहेमशब्दानुशासन** की स्वोपज्ञवृत्ति से निम्नलिखित शब्द उद्धृत किये हैं—"**उपोमास्वातिं संङ्गृहीतारः**" (२/२/३९) अर्थात् उमास्वाति संग्रहकर्त्ताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं। इसके आगे उपाध्याय जी लिखते हैं—"आगमों से संग्रह किये जाने से यह ग्रन्थ (तत्त्वार्थसूत्र) भी संग्रहग्रन्थ माना गया है। --- कहीं पर तो शब्दशः संग्रह है, अर्थात् आगम के शब्दों को संस्कृतरूप दे दिया गया है और कहीं पर अर्थसंग्रह है, अर्थात् आगम के अर्थ को लक्ष्य में रखकर सूत्र की रचना की गयी है। कहीं-कहीं पर आगम में आये हुए विस्तृत विषयों को संक्षेपरूप से वर्णन किया गया है।"[५२] इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम देखते हैं कि ऊपर उद्धृत सूत्रों की शब्दरूप सामग्री तथा

---

५१. तत्त्वार्थाधिगमाख्यं बह्वर्थं सङ्ग्रहं लघुग्रन्थम्।
वक्ष्यामि शिष्यहितमिममर्हद्वचनैकदेशस्य॥ २२॥ तत्त्वार्थाधिगमभाष्य / सम्बन्धकारिका।

५२. तत्त्वार्थसूत्र-जैनागम-समन्वय / प्रस्तावना / पृ.(छ)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

क्वचित् अर्थरूप सामग्री भी श्वेताम्बर-आगमों में उपलब्ध नहीं है, जब कि दिगम्बर-ग्रन्थों में उपलब्ध है। यह इस बात का प्रबल प्रमाण है कि तत्त्वार्थसूत्रकार ने उक्त शब्द और अर्थरूप सामग्री तथा संरचनाशैली का संग्रह कुन्दकुन्दसाहित्य से किया है। अतः पूर्वोक्त श्वेताम्बर विद्वानों की यह मान्यता अप्रामाणिक सिद्ध हो जाती है कि कुन्दकुन्द ने तत्त्वार्थसूत्रकार का अनुकरण किया है। इस प्रकार सिद्ध है कि कुन्दकुन्द तत्त्वार्थसूत्रकार से पूर्ववर्ती हैं।

यतः उमास्वाति का स्थितिकाल ईसा की द्वितीय शताब्दी है, अतः कुन्दकुन्द ईसा की द्वितीय शताब्दी से पूर्व हुए थे, यह स्वतः सिद्ध होता है।

४.४. उमास्वाति कुन्दकुन्दान्वय के आचार्य

दि इण्डियन ऐण्टिक्वेरी की नन्दिसंघीय पट्टावली में उमास्वामी (उमास्वाति) का नाम कुन्दकुन्द के बाद आया है। प्रथम शुभचन्द्रकृत नन्दिसंघ की गुर्वावली में भी वह कुन्दकुन्द के ही पश्चात् है[५३] तथा अनेक शिलालेखों और प्रशस्तियों में उमास्वामी या उमास्वाति को कुन्दकुन्दान्वय में उत्पन्न बतलाया गया है।[५४] सन् १९२९ में पं० सुखलाल जी संघवी के पत्र के उत्तर में पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार ने लिखा था—

"कुन्दकुन्द तथा उमास्वाति के सम्बन्धवाले कितने ही शिलालेख तथा प्रशस्तियाँ हैं, परन्तु वे सब इस समय मेरे सामने नहीं हैं। हाँ, श्रवणबेल्गोल के जैन शिलालेखों का संग्रह इस समय मेरे सामने है, जो माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला का २८ वाँ ग्रन्थ है। इसमें ४०, ४२, ४३, ४७, ५०, १०५ और १०८ नम्बर के ७ शिलालेख दोनों के उल्लेख तथा सम्बन्ध को लिए हुए हैं। पहले पाँच लेखों में 'तदन्वये' पद के द्वारा और नं० १०८ में 'वंशे तदीये' पदों के द्वारा उमास्वाति को कुन्दकुन्द के वंश में लिखा है। इनमें सबसे पुराना शिलालेख नं० ४७ है, जो शक सं. १०३७ का लिखा हुआ है। --- मैं अभी तक उमास्वाति को कुन्दकुन्द का निकटान्वयी मानता हूँ , शिष्य नहीं। हो सकता है कि वे कुन्दकुन्द के प्रशिष्य रहे हों।"[५५]

---

५३. देखिए , अष्टम अध्याय के अन्त में **विस्तृत-सन्दर्भ** के अन्तर्गत गुर्वावली का मूलपाठ।

५४. श्रीपद्मनन्दीत्यनवद्यनामा ह्याचार्यशब्दोत्तरकोण्डकुन्दः।
द्वितीयमासीदभिधानमुद्यच्चरित्र-सञ्जातसुचारणर्द्धिः॥ ४॥
अभूदुमास्वाति-मुनीश्वरोऽसावाचार्य-शब्दोत्तर-गृद्धपिच्छः।
तदन्वये तत्सदृशोऽस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेषपदार्थवेदी॥ ५॥ जै.शि.सं./ मा.च./ भा.१/ ले. क्र.४७।

५५. 'अनेकान्त'/ वर्ष १/ किरण ६-७ / वीर नि.सं. २४५६ / पृष्ठ ४०५-४०६।

यतः शिलालेखों में उमास्वाति को कुन्दकुन्दान्वय में उद्भूत बतलाया गया है और पट्टावलियों में कुन्दकुन्द के बाद उनका नाम आया है, इससे सिद्ध है कि कुन्दकुन्द उमास्वाति से पूर्ववर्ती थे।

५
द्वि. श. ई. की 'तिलोयपण्णत्ती' में कुन्दकुन्द की गाथाएँ

५.१. तिलोयपण्णत्ती का रचनाकाल

आठवीं शताब्दी ई० के **वीरसेन स्वामी** ने **धवलाटीका** में तिलोयपण्णत्तिकार **यतिवृषभ** के मतों का उल्लेख किया है और **तिलोयपण्णत्ती** से अनेक उद्धरण भी दिये हैं।[५६] यतिवृषभाचार्य ने **कसायपाहुड** पर **चूर्णिसूत्रों** की भी रचना की है। वीरसेन स्वामी ने **जयधवला** में लिखा है—

"**तदो अंगपुव्वाणमेगदेसो चेव आइरियपरम्पराए आगंतूण गुणहराइरियं संपत्तो। पुणो तेण गुणहरभडारएण णाणपवादपंचमपुव्व-दसमवत्थु-तदियकसायपाहुड-महण्णवपारएण गंथवोच्छेदभएण पवयणवच्छल-परवसीकय-हियएण एदं पेज्जदोसपाहुडं सोलसपदसहस्सपमाणं होंतं असीदि-सदमेत्तगाहाहि उवसंघारिदं। पुणो ताओ चेव सुत्तगाहाओ आइरियपरंपराए आगच्छमाणीओ अज्जमंखु-णागहत्थीणं पत्ताओ। पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसद-गाहाणं गुणहर-मुहकमल-विणिग्गयाणमत्थं सम्मं सोऊण जयिवसहभडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं।**"(ज.ध./क.पा.भा.१/गा.१/ अनु. ६८/पृ.७९-८०)।

अनुवाद—"तत्पश्चात् **अंगों और पूर्वों का एकदेश** ही आचार्यपरम्परा से आकर **गुणधर आचार्य** को प्राप्त हुआ। पुनः **ज्ञानप्रवाद** नामक पाँचवे पूर्व की दसवीं वस्तुसम्बन्धी तीसरे कषायप्राभृतरूपी महासागर के पार को प्राप्त श्री गुणधर-भट्टारक ने जिनका हृदय प्रवचन के वात्सल्य से भरा हुआ था, सोलह हजार पदप्रमाण इस **पेज्जदोसपाहुड** का ग्रन्थविच्छेद के भय से, केवल एक सौ अस्सी गाथाओं के द्वारा उपसंहार किया। पुनः वे ही सूत्रगाथाएँ आचार्य-परम्परा से आती हुईं **आर्यमंक्षु** और **नागहस्ती** को प्राप्त हुईं। पुनः उन दोनों आचार्यों के पादमूल में बैठकर प्रवचनवत्सल **यतिवृषभ**-भट्टारक ने

---

५६. क – "दुगुण-दुगुणो दुवग्गो णिरंतरो तिरियलोगे त्ति तिलोयपण्णत्तिसुत्तादो य णव्वदे।" धवला-टीका / षट्खण्डागम / पु.३ / १,२,४ / पृ.३५।

ख – "तं वक्खाणाभासमिदि कुदो णव्वदे? जोइसियभागहार-सुत्तादो चंदाइच्चबिंबपमाण-परूवयतिलोयपण्णत्तिसुत्तादो च।" धवलाटीका / षट्खण्डागम / पु.३ / १,२,४ / पृ.३६।